आत्म-योग

प्रथम खण्ड

सम्पादक

बहन निर्मल जी

अध्यात्म केन्द्र का प्रथम पुष्प

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

प्रकाशक,
नारायण आश्रम
शिवकोटी
प्रयाग

मुद्रक
श्री गुरु सेवा प्रेस,
८७, महाबीरन् लेन
इलाहाबाद-३

समर्पण

सब भाँति नाथ अयोग्य हौं सेवा नहीं कछु बनि परै।
मति मंद 'निर्मल' देह-नौका पार भवनिधि किमि करै ॥
गुरुदेव आश्रय रावरो, निज जानि जन करुणा करुणा करौ।
यह भेट किंचित शिष्य की, स्वीकारि मन आनंद भरौ ॥

चरण-चञ्चरीक
"निर्मल"

श्री १००८ परमपूज्य प्रातःस्मरणीय श्री नारायण महाप्रभु

श्री गुरु चरण वन्दन करूँ, हाथ जोड़ शीश नाय।
मोह ग्रसित नर नारि को, लीजे शीघ्र बचाय॥

आमुख

जब जब धर्म का ह्रास एवं अधर्म की वृद्धि हुई है, तब तब भगवान् स्वयं अवतरित होकर अधर्म का दमन एवं धर्म की स्थापना करते रहे हैं। कभी-कभी स्वयं न पधार कर अपनी दिव्य विभूतियों—धर्माचार्य, सन्त महात्मा, महापुरुष एवं सद्गुरु के रूप में ही अवतरित होते है। जिनके दर्शन एवं क्षणिक सत्संग द्वारा मनुष्यों का उद्धार हो जाता है। इसी में उनको महान् प्रसन्नता होती है।

प्रस्तुत पुस्तक "आत्म-योग" में निज अनुभव को आशीर्वाद के रूप में प्रदान करने वाले सद्गुरु श्री नारायण महाप्रभु भी भगवान् की इन्हीं दिव्य विभूतियों में से एक हैं। आपके द्वारा समय-समय पर दिये हुए धर्मोपदेशों ने जैसे कर्मयोग, ध्यान योग, भक्ति योग, ज्ञान योग आदि विषयों पर विवेचन कर "गागर में सागर" भर देने वाली कहावत चरितार्थ करके दिखा दिया है।

आपके इस "आत्मयोग" चयन का मुख्य लक्ष्य यही है कि मानव मात्र को अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए भगवत् एवं सद्गुरु प्राप्ति के साधनों में लगे रहना ही मानव जीवन की सफलता है जैसा कि महाप्रभु ने अपने सद्गुरु पूज्यपाद १०८ श्री स्वामी केशवानन्द जी सरस्वती के सानिध्य में रहकर अनुभव प्राप्त किया है। सनातन धर्मावलम्बी सर्वसाधारण के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपादेय होगी। पुस्तक के इस तीसरे संस्करण में प्रथम संस्करण की सभी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया गया है।

श्री नारायण आश्रमशिवकोटी में १८ माताएँ इस समय अध्यात्म जीवन व्यतीत कर रही हैं। उन लोगों की सेवा-भावना उच्चकोटि की है।

गुरु श्री नारायण महाप्रभु के प्रति प्रत्येक को अटूट निष्ठा है। आश्रम की कुछ देवियाँ आज के युग को देखते हुए प्रशंसनीय जीवन व्यतीत कर रही है। आश्रम को देखने से ही वाल्मीकि आश्रम का आभास होता है। उच्च वंश की माताओं ने अपने वैभवमय जीवन का परित्याग करके तपोमय जीवन बना लिया है। प्रातःकाल चार बजे उठ जाना, रात्रि ग्यारह-बारह बजे सोना, भजन, कीर्तन, पूजन में संलग्न रहना, स्वाध्याय सत्संग में निरत रहना, इन लोगों का नित्य कर्म है। अतिथि-सत्कार, दीन, अनाथों की सेवा, परस्पर प्रगाढ़ आत्मीयता इन लोगों का भूषण है।

रानी हेमन्त कुमारी, रानी महेश्वरी जी (भद्री) जमुना देवी पोद्दार (कलकत्ता), मुन्नी देवी, (शाहजहाँपुर), श्याम सखी जी (मिर्जापुर), प्रेमावती जी (मुजफ्फर नगर), लक्ष्मी देवी आरा), सत्या देवी (दारागंज) गीता देवी (नैपाल), बीना देवी (प्रयाग), निर्मला जी (प्रयाग) आदि प्रमुख देवियाँ हैं। ये देवियाँ अध्यात्म तत्व की साधना में लगी हुई हैं एवं अध्यात्म केन्द्र के द्वारा ज्ञानार्जन करती हैं। उनकी सर्व शक्तिमान् स्वरूप सद्गुरु से निवेदन है कि वह मुझे अपने पदाम्बुजों के मकरंद पान में मग्न रखने की कृपा करें तथा अपने वचनामृत से भास्कर के प्रभा के समान ही सामाजिक ज्ञानान्धकार को मिटाकर अमरता की वर्षा करते रहें।

विनीत

बद्रीप्रसाद मिश्र 'नारद' रामायणी

नारायण आश्रम
शिवकोटी प्रयाग
३१ जुलाई १९६२ ई०

नम्र-निवेदन

श्री श्री १००८ परम पूज्य श्री सत्गुरु महाराज केशवानन्द जी सरस्वती की अगाध अनुकम्पा से तथा मेरे परम पूज्य १०८ तपोनिष्ठ सत्गुरु श्री नारायण महाप्रभु की महान् कृपा से उनकी इस महावाणी को पक्तिबद्ध करने का प्रयास किया है। संक्षिप्त में श्री गुरुदेव भगवान् के जीवन चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है, किन्तु मैं अज्ञान सी बालिका उनकी महिमा का क्या गान कर करती हूँ जिसको कि शेष-महेश भी नहीं गा कर पार पा सके।

मैं अपने उन गुरु बहिनों एवं भाइयों की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक का लिखने के लिए बाध्य किया है। रामायणी कविरत्न पंडित बद्रीप्रसाद जी मिश्र "नारद" को हार्दिक धन्यवाद है जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाश में लाने के लिए विशेष परिश्रम किया है। मैं कोई लेखिका नहीं हूँ। मैं श्री प्रभु के चरणारविन्दुओं की दासानुदास हूँ। श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु की दया की एक किंकरी हूँ जिसने अपनी टूटी-फूटी भाषा में अध्यात्म केन्द्र के प्रथम वर्ष के प्रवचनों को लेखबद्ध कर दिया है।

आशा है कि विज्ञ वाचक—

"संत हंस गुण गहहिं परिहरि वारि विकार"

निवेदिका

प्रभु की कृपाकांक्षिणी सेविका

"निर्मल"

गुरु पूर्णिमा पर्व

शुभ उत्सव गुरु पूर्णिमा, दिन सुन्दर है आज आया।
नव ज्योत्स्ना को हार-सा, विहँसि हिय में है आज छाया॥
ममता अहमता अवगुणों को, त्यागकर प्रेम संदेश है लाया।
सद्गुरु चरण के पूजने, से घन तिमिरान्ध नसाया॥
युग-युग से चल रही प्रथा, यह सुन्दर विज्ञानमयी।
मानव के कल्याण हेतु, आती प्रति वर्ष नयी-नयी॥
सद्गुरु अनुग्रह जब किये, तब जान इसको हम गये।
नारायण प्रभु की इस कृपा से, भव-सिन्धु तरना सिख गये॥
सब शिष्य निर्मल हो रहे, पा सद्गुरु के सत्संग को।
अनमोल है गुरु पूर्णिमा, कैसे कहूँ निज भाग को॥
अध्यात्म केन्द्र के भक्त-जन, गुरु-पद नावहिं माथ।
नारायण निर्मल करो, तब सब होईं सनाथ॥

श्री सद्गुरवे नमः

श्री नारायण महाप्रभु का संक्षिप्त जीवन-परिचय

श्री नारायण महाप्रभु का प्रादुर्भाव विक्रमीय सम्वत् १९७८ आश्विन मास में, जिन दिनों सभी लोग मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के गुणगान कर जीवन सफल बना रहे थे और प्राची दिशा में ऊषा अपना नव उज्ज्वल हार लिये प्रस्तुत थी, उसी ब्रह्म वेला की उत्तम घड़ी में, हिमाचल की सुरम्य गोद में स्थित नेपाल राज्य के धनकुट्टा जिले के अन्तर्गत मूँगा नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता भक्त-प्रवर श्री भक्त बहादुर जी इसी क्षेत्र के प्रतिष्ठित एवं सम्मानित व्यक्ति थे।

आपके पूर्वजों द्वारा ही वह ग्राम बसाया गया था। आपके पिता नैपाल राज्य के एक उच्च पदाधिकारी होते हुये भी सरल स्वभाव एवं दयालु हृदय थे। आप सात संतानों के जनक थे। श्री नारायण महाप्रभु की माता जी भी भक्तमयी एवं पतिपरायणा देवी स्वरूप थीं। बाल्यकाल में आपको प्यार से यइया (नैपाली उच्च वंशीय नाम) नाम से पुकारते थे।

पिता जी आपको सर्वाधिक प्यार किया करते थे और माँ तो आपके पालन करने में सुध-बुध ही खो बैठती थीं।

आपका शैशव काल अत्यन्त मन-मोहक और आकर्षक था। आपके घर में छः बड़े भाई और एक बड़ी बहिन थीं। पिता का सारा स्नेह आपको ही प्राप्त था जिसका अनुभव कर आपके

गई। फिर तो वह घबड़ा कर घर के अन्दर ही भागने लगी और भागते-भागते थक कर चिल्लाने लगी। उसको चिल्लाते देखकर आप भी रोने लगे। बाहर कुहराम मच गया। सभी सोचने लगे कि क्या हुआ। अन्त में देखा तो आप और आप की संगिनी बकरी की अपूर्व दशा। सभी लोग इन मित्रों को देखकर खिलखिला कर हँस पड़े। इस समय आपकी आयु १२ वर्ष के लगभग थी।

साहस-प्रियता

धैर्य, साहस और आत्म-विश्वास का बीजांकुर श्री नारायण महाप्रभु जी के बाल-जीवन में ही विद्यमान था। आप जिस बात पर अड़ जाते थे उसे पूरा ही करके छोड़ते थे। अपने लक्ष्य से मुड़ना आप ने सीखा ही नहीं था। स्त्रियों की सहज भीरुता आपके पास नहीं आ पाई। अपने भाइयों और पिता जी के सानिध्य में बैठकर राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक चर्चा सुनने में आपको विशेष आनन्द आता था। अपने भाइयों के साथ और रहकर आपने सायकिल चलाना, घोड़े की सवारी करना बन्दूक चलाना भी सीखा। आपने सदैव साहस से कार्य किया इसलिए अपने साथियों में आप सहज में ही श्रेष्ठ हो गयें।

एक बार गुरुदेव भगवान के साहस को देखने के लिये पिता जी ने कहा कि क्या तुम इस कटिहार मौजे से मूँगा अपने परिवार वालों के साथ, जिसमें सभी स्त्रियाँ ही हैं, जा सकोगी? आपको साहस के काम बहुत रुचिकर होते थे। आपने पिता जी से कहा—अवश्य पिता जी, मैं अवश्य सबको सकुशल ले जा सकती हूँ। पिता जी ने आप को ४ हजार रुपये नकद दिये

और परिवार की स्त्रियों को आपके साथ कर दिया। मार्ग में विकट जंगल पड़ता था। आपने अपना साहस नहीं छोड़ा। मार्ग अधिक लम्बा होने के कारण आपने उस जंगल में एक ग्राम के समीप अपना पड़ाव डाला। यह गाँव बहुत छोटा था जिसमें दो-चार ही घर आसपास दिखाई देते थे। जब आप छः हजार रुपये लेकर एक भयपूर्ण मार्ग को निर्विघ्न पार कर अपने ग्राम में पहुँच गये तो सभी आपके इस साहस को देखकर चकित रह गये।

धार्मिक भावना के अंकुर

विशिष्ट और महान् आत्माएँ परमेश्वर के प्रति सहज ही धावित होती हैं। वास्तव में ये संत आत्माएँ ही अंध-विश्वास की धारणा रखकर प्रभु-प्रेम की ओर उन्मुख होती हैं, यह ईश्वर के प्रति अटूट और अमिट सत्य धारणा रखती हैं। उनमें अवस्था वृद्धि के साथ आस्तिकता की यह भावना पल्लवित और पुष्पित होती है तथा वे अपने सुमधुर सुवास से सबको सुवासित करती हैं।

गुरुदेव बाल्यावस्था के अल्लहड़पन में भी अपने लक्ष्य की ओर जाने में जागरुक दीख पड़ते थे। परमात्मा के चरणों में अविचल प्रेम होने की प्रक्रिया उनके एकान्त शान्त जीवन में ही प्रकट हो गई थी।

श्री गुरुदेव भगवान को गुड्डे-गुड़ियों का खेल कभी न भाता था। आप इस खेल के स्थान पर श्रीराम, लक्ष्मण आदि की मिट्टी की मूर्तियाँ बनाया करते थे। उनके लिए मिट्टी के घरोंदे बनाया करते थे। प्रतिमाओं में अक्षत की दन्त-पंक्ति बनाते, केशपाश की व्यवस्था करते और श्रीराम के जीवन स

सम्बन्धित विविध क्रीड़ाएँ करते। उस समय प्रत्येक लीला में आपकी भक्ति-भावना का अपूर्व प्रदर्शन हुआ करता था। जब खेल समाप्त हो जाता तो आप स्वपूजित प्रतिमा और वहाँ के घरोंदों को जल लाकर लीप-पोतकर सामान्य मिट्टी वना दिया करते थे कि कहीं इन प्रतिमाओं पर किसी व्यक्ति का चरण न पड़ जाय इसी डर से आप इसे लीप-पोतकर ठीक कर देते। इस प्रकार खेल-खेल में ही श्रीराम चरित्र की सुन्दर शिक्षा दे डालते थे। सभी बच्चे इससे वहुत प्रभावित हो जाते थे।

शिक्षा और सत्संग

मानव-जीवन में शिक्षा का विशेष महत्व है। बाल्यावस्था में मिली सुन्दर शिक्षा जीवन में दिव्यता का संचार कर मनुष्य को देवता वना देती है। इस संसार में सभ्यता-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए भी शिक्षा का विशेष महत्व है। किन्तु सुसंस्कृत जीवन व्यतीत करने के लिये सत्संग का और भी महत्व है। सत्संग करने वाले व्यक्ति का जीवन आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होकर उसकी आत्मा को सवल करता है।

आपकी शिक्षा मझले भाई की देख-रेख में घर पर ही होती रही। बुद्धि की प्रखरता के कारण आपको एक बार की पढ़ाई में ही सब पाठ कण्ठस्थ हो जाते थे। पढ़ने से जो समय बचता वह भगवत् चर्चा में व्यतीत होता था। घर में जब श्री सत्यनारायण जी की कथा का आयोजन होता तो आप अपनी माता जी के साथ व्रत रखते थे। जो महात्मागण आपके घर आते उनके सत्संग का भी लाभ उठाते थे। इस प्रकार आप अपने जीवन का सुनिर्माण किया करते। परिवार में एक अध्यापक अन्य बच्चों को पढ़ाने आया करते। उनके द्वारा जो परीक्षा जी

जाया करती थी उसमें आप सहर्ष सम्मिलित होते थे और सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुआ करते।

प्रकृति और आचरण

आपकी प्रकृति बाल्यावस्था से ही मधुर है। निर्भयता और साहस आप में पर्याप्त है। सुकर्मों की ओर ही आपकी दृष्टि सदैव जाती थी। कष्ट के समय भी आप सदैव धैर्य रखते थे। आपका स्त्रियों के बीच बैठना अधिक रुचिकर नहीं था, क्योंकि जहाँ भी स्त्रियाँ एकत्रित होतीं वे प्राय: घरेलू दुःख-सुख की बातें किया करती थीं। आपकी रुचि इन मोहमयी बातों में तनिक भी नहीं होती थी इसलिये आप इन सब से अपने को अलग रखते थे। घर के काम काज विशेष कर रसोई बनाने के कृत्य में आपका मन नहीं लगता था। उच्च वंश में जन्म लेने के कारण आपको घर के सब प्राणियों का भोजन बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

आप में यह गुण सदैव विद्यमान् था कि जो भूल अपने में देखते उसके सुधार का तुरन्त संकल्प करते और इस संकल्प को पूरा करने में कोई प्रयत्न शेष नहीं रखते थे। ऐसी साधना करने से धीरे-धीरे आपका जीवन त्याग और तपस्या से पूर्ण होने लगा और उसमें अद्भुत सहन-शक्ति का बल आने लगा। आपकी सहज प्रकृति ऐसी थी कि जिससे आप स्नेह करते उससे पूर्णतया घुल मिल कर एक हो जाया करते पर जब आप ऐसी अवस्था देखते कि उसका प्रेम आशक्ति बना रहा है तब आप विरक्ति की ओर भी मुड़ने का प्रयास करते और एक विरक्त महात्मा की भाँति मोहासक्ति से ऊपर उठकर विरक्त हो जाया करते। आपका स्वभाव द्रवणशील था। किसी का दुःख देखकर

आपका हृदय सहज ही द्रवित हो जाता था और आप दुःख से उसकी रक्षा करते थे इसीलिए दुखी व्यक्ति की यथाशक्ति सहायता किया करते हैं। इसी प्रकार आपका आचरण आरम्भ से ही दिव्य था।

वैराग्य और साधना

इस प्रकार से आप शनैः शनैः बड़े हो गये। आपकी प्रकृति स्वच्छन्द थी। इतना हो जाने पर भी आप अपने को बालिक ही समझते थे। इसके पश्चात् आप छः वर्ष गृहस्थाश्रम में रहे प्रभु की लीला विचित्र है। उसका तो अभीष्ट ही कुछ और था अतः इसके पश्चात आप गृहास्थाश्रम से विरक्त हो गये और अपना सारा समय परमपिता परमेश्वर की सेवा में व्यतीत करने लगे। माया की मृगतृष्णा में पड़ना अब आपको सह्य नहीं था। आपने अब जीवन चर्चा बदली। अब आप दिन रात प्रभु के वियोग में रोते रहते थे। भोजन आदि का भी परित्याग कर दिया। सबके बहुत कहने सुनने पर आप दिन भर के पश्चात् ८ बजे रात्रि को बिना दूध की चाय गुड़ डाल कर जीवन रक्षा के हेतु पी लेते थे। पाँच-छः मास तक आपका आहार यही रहा। इसी बीच भक्त लोग आपकी कठिन तपस्या को देखकर दुःखी हो गये एवं बहुत आग्रह किया कि आप बीच में कुछ फल अवश्य ग्रहण कर लें। भक्तों के बहुत प्रार्थना करने पर आप बेर और अमरूद के फल ग्रहण करने लगे। इसके बाद कुछ दिन तक केवल खट्टा जमीरी नींबू एवं हरा मिर्च पीसकर पेय बना कर उसका सेवन किया। इसके पश्चात् कुछ मास तक आप अरुई अथवा बंडा सुखाकर, घिसवाकर, उस बडे के आटे को पानी में उबालकर दिन में एकबार ही ग्रहण करते थे। भक्ति के प्रारम्भ के पाँच-छः वर्ष पश्चात कच्ची मूंगफली

और चाय एक बार भक्तों के बहुत प्रार्थना करने पर, ग्रहण करने लगे।

एक बार आपने आठ दिन में सवा लाख राम-राम लिखकर और लिखे हुए राम-राम को अलग-अलग काटकर आटे की गोली बनाकर मछलियों को खिलाया। इस प्रकार आपकी धारणा और साधना सांसारिकता के बिल्कुल विपरीत बनने लगी।

श्री गुरुदेव भगवान का यह नियम था कि एकादशी के दिन रात्रि को जागरण कर भगवान के पावन नामों का कीर्तन करते थे। अन्य भक्त माताएँ भी आया करती थीं। लोगों ने साधना में विघ्न डालने के लिये उन माताओं को आने से रोका। जब यह बात आपको ज्ञात हुई तो आपने कहा कि भक्त आत्माओ! डरो मत। तुम अविनाशी ईश्वर के अंश हो। तुम उसका गुण-गान करो। वह तुम्हारी सहायता करेगा। तुमको वह आत्मबल देगा। जिसकी रक्षा करता है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

> जाको राखे साइयां, मारि सकै न कोय।
> बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय॥

इस प्रकार के वीर वचनों को सुनकर भक्तगण को प्रोत्साहन होता था। दिन पर दिन भक्ति एवं भक्त की वृद्धि होने लगी और आनन्द बरसने लगा।

श्रीगुरुदेव की शरण में—

अब आपकी दृष्टि संसार की नश्वरता पर बहुत जाया करती थी। इसलिए आप सोचते थे कि अनन्त प्रभु की शरण

प्राप्त कर विरही भक्त प्रेमियों को सच्ची शान्ति का अवश्य अनुभव करायेंगे एवं स्वयं भी साक्षात करेंगे।

एक दिन की बात है। आप अपने द्वार पर बैठे नेत्र बन्द किए हुए विरक्ति की भावना से परिपूर्ण हो रहे थे। इतने में शिवकोटी के एक सुविख्यात सिद्ध महात्मा संत केशवानन्द जी महाराज, जिनकी अवस्था उस समय ८० वर्ष के लगभग रही होगी, उनके पास से होकर निकल गये। वास्तव में सुसिद्ध महात्मा संत केशवानन्दजी महाराज को पहिले ही से यह ज्ञात था कि उनका एक अनन्य भक्त इस मायापुरी में निवास कर रहा है, इसलिये उसे वास्तविक ज्ञान और भक्ति पथ पर चलाने के उद्देश्य से पीलीभीत से ६ मास पूर्व ही यहाँ आये थे और शिवकोटी में गंगा तट पर निवास किया करते थे। जब ये महात्मा श्री नारायण महाप्रभु के पास से होकर निकल गये तो सहसा उनके पैरों की आहट से आपका ध्यान भंग हो गया और आपके नेत्र खुल गये। उस समय आपने देखा कि सामने एक वृद्ध महात्मा चले जा रहे हैं। पहिले तो आपके हृदय में कुछ खीज-सी उत्पन्न हुई कि कैसे महात्माजी हैं जो इतने समीप से चले जा रहे हैं पर तुरन्त ही आपके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस साधु को बुलाऊँ। सम्भव है इसके द्वारा मुझे कुछ शान्ति प्राप्त हो जाये क्योंकि लोग कहते हैं कि साधु जनों का पृथ्वी में विचरण जीवों की मंगल कामना के लिये होता है। ऐसा सोच कर आपने महात्मा जी, को उच्च स्वर से पुकारा—महात्मा जी, आप कहाँ जा रहे हैं? कृपया इधर तो आइये।" सन्त केशवानन्द जी चाहते भी यही थे। श्री नारायण महाप्रभु की प्रार्थना पर वे मुड़े और क्षणमात्र में आपके सामने आ गये। अब पुनः प्रार्थना की—"महाराज बैठ जाइये। मुझे

पुनः प्रार्थना की—"महाराज बैठ जाइए। मुझे आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं।" महात्मा जी कोई साधारण कोटि के सन्त तो थे नहीं जो संकोच करके बैठ जाते। आपने झट से उत्तर दिया नहीं, मैं नहीं बैठूँगा। तुम बताओ तुम्हें क्या पूछना है? आपने कहा कि मुझे गृहस्थी से विरक्ति हो गई है, पर कभी-कभी मुझे अनुरक्ति हो जाती है और मेरा हृदय बहुत दुःखी हो जाता है। स्वप्नावस्था में प्राप्त दुःख भी मुझसे सहन नहीं होता है। महात्मा जी ने उत्तर दिया, तुम यह क्या बात कर रहो हो? स्वप्न किसे कहते हैं क्या तुम नहीं जानती हो?

श्री नारायण महाप्रभु ने उत्तर दिया कि जब हम सो जाते हैं तो उस समय निद्रावस्था में जो कुछ दिखाई पड़ता है उसी को हम स्वप्न कहते हैं। इसके अतिरिक्त स्वप्न और क्या होता है?

महात्मा जी हँस पड़े और कहने लगे। बेटा, तुम कैसी बात कह रहे हो। तुम जिस स्थिति में बात कर रहे हो।हम उसे भी स्वप्न कहते हैं। यह जो तुम प्रायः रोया करती हो यह भी तो तुम स्वप्न में ही रो रही हो, पर वास्तविकता यह है कि तुम कहाँ रो रही हो?

श्री नारायण महाप्रभु महात्माजी की इन मार्मिक बातों से प्रभावित हुए, पर अब भी उनकी बातों का वास्तविक मर्म आपने नहीं जाना था। अतः अब आपने दूसरा प्रश्न किया—अच्छा आप मुझे अब यह बताइए कि मैं क्या करूँ? महात्मा जी बोले—करो क्या, अभी ही तो ईश्वर ने तुम्हें सुख भोगने का सुअवसर प्रदान किया है। अब तुम जीवन का सच्चा सुख और आनन्द लूटो तथा ईश्वर से प्रार्थना करो कि हे ईश्वर!

जीवन का यथार्थ सुख प्रदान करने के लिए मुझे तुम दो सौ वर्ष की आयु प्रदान करो।

महात्मा जी की इस विस्मयकारी वाणी को सुनकर श्री नारायण महाप्रभु ने चकित होकर बारम्बार महात्मा जी के चरणों से लेकर मुख मण्डल तक कई बार दृष्टि डाली कि यह क्या कह रहे हैं। बारम्बार महात्मा की ओर देखने पर महात्मा जी ने कहा—बेटा, ऊपर से नीचे तक बार-बार क्या देख रहे हो? श्री नारायण महाप्रभु ने कहा—हम यही देख रहे हैं कि ऐसी अवस्था में आप दो सौ वर्ष की आयु माँग कर सुख भोगने को कह रहे हैं। इसका क्या मतलब ....। देखते-देखते महात्मा जी चल पड़े।

आपका और श्री गुरुदेव संत केशवानन्द जी का अनिवार्य समय को छोड़कर दिन रात सत्संग होता रहता था। श्री नारायण महाप्रभु जी के जीवन में पूर्व जन्मों के उच्च एवं भव्य संस्कार थे, अध्यात्म विद्या का ज्ञान आप में पहले से ही अर्जित था। श्री गुरुदेव का सम्पर्क पाकर, मोह जनित आवरण को त्याग कर, अपने शुद्ध स्वरूप में महाप्रभु प्रकाशमान हुए।

बाल्यकाल में राधा कृष्ण की युगल मूर्ति का आप पूजन किया करते थे। जब तक आप प्रभु की प्रतिमा का यथाविधि पूजन और अर्चन नहीं कर लेते थे तब तक आप आहार नहीं ग्रहण करते थे। कुमारी अवस्था के पश्चात यहाँ आने पर भी आपकी वह साधना जारी रही। अपना अधिकांश समय उन्हीं की सेवा में व्यतीत करते थे। आपकी यह स्थिति देखकर किसी ने उस मूर्ति को छिपा दिया। अब जब आपने अपने आराध्य देव की प्रतिमा नहीं देखी तो आपको बहुत दुःख

हुआ। तत्पश्चात् वह मूर्ति वापस लाकर दे दी गयी। अब आपकी भक्ति-भावना निर्बाध गति से चलने लगी।

भक्ति का यह बीजांकुर आगे चलकर बहुत पल्लवित हुआ। श्री गुरुदेव के मुखारविन्द से निकले हुए पावन शब्दों ने आपके अज्ञानान्धकार को पूर्णतया नष्ट कर दिया और उसमें ज्ञान का दिव्य प्रकाश भर दिया। संत केशवानन्द जी का शरीर वृद्धता के कारण बहुत जीर्ण हो चुका था। वे प्रायः छः वर्ष से एक योग्य पात्र की खोज में थे जिसे वे अपनी परम गोपनीय ब्रह्म विद्या बताते और अभ्यास करा कर अपने चोले का परित्याग करते। श्री नारायण महाप्रभु जी को पाकर उन्होंने सन्तोष का अनुभव किया और यह चाहा कि यथाशीघ्र महाप्रभु को ज्ञानार्जन और अभ्यास करा कर इस चोले का परित्याग करूँ।

श्री नारायण महाप्रभु के साथ गुरुदेव सन्त केशवानन्द जी का शिष्य और गुरु रूप में प्रगाढ़ सम्बन्ध था। गुरुदेव जी की भक्त मंडली ने जब यह देखा कि श्री गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु को ही अपना अधिकारी बनाना चाहते हैं, और उन्हें रहस्य पूर्ण तथा गुप्त तथ्यों का ज्ञान करा रहे हैं तो उन्हें स्पर्द्धा होने लगी। एक दिन अकस्मात् भक्त-मंडली ने निवेदन किया कि कहीं नारी भी ज्ञान की अधिकारिणी होती है? गुरुदेव जी महाराज ने उन लोगों के प्रश्न करने के पूर्व उनके अन्तःकरण की छिपी बात जान कर हँस पड़े और कहने लगे कि तुम क्या चाहते हो? भक्त मंडली ने वही प्रश्न दुहरा दिया।

गुरुदेव सन्त केशवानन्द जी ने कहा—तुम लोगों ने आज तक जो ज्ञानार्जन किया वह सब निष्फल ही रहा। तुम लोग अभी भी अज्ञान में पड़े हो! मैं तुम्हारी बातों का क्या समाधान

करूँ! अच्छा बताओ, सरस्वती जी कौन हैं? सरस्वती जी का नाम लेते ही भक्त मंडली में सन्नाटा छा गया। श्री गुरुदेव जी ने अब कहना प्रारम्भ किया कि ज्ञान दृष्टि से निम्नलिखित आठ बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। (१) रूप और कुरूप, (२) नर और नारी, (३) मान और अपमान, (४) जाति और कुजाति, (५) बाल और वृद्ध, (६) पाप और पुण्य, (७) दुःख और सुख, (८) गरीब और अमीर।

जब वह अनन्त प्रभु परमात्मा ही सभी जीव आत्माओं में व्यापक है, तो फिर आत्माओं में नर और नारी का भेद क्या है? यदि भारत के तत्वज्ञानी ऋषियों ने ज्ञान दृष्टि से नर और नारी में भेद माना होता तो सरस्वती को ज्ञान की अधिष्ठात्री क्यों मानते? आखिरकार सरस्वती भी तो नारी स्वरूपा ही हैं! उन्हें विश्व ज्ञान के सर्वोच्च आसन पर क्यों आसीन किया गया?

:

सत्संग के पावन प्रसंग

श्री नारायण महाप्रभु का श्री गुरुदेव के साथ सर्वदा सत्संग हुआ करता था। अपनी सेवाओं एवं गुरु चरणों में दृढ़ निष्ठा होने से आप श्री गुरुदेव का अनुग्रह प्राप्त कर चुके थे। श्री गुरुदेव की निराली प्रकृति देखकर और आपके आकर्षण को हृदयंगम कर सदैव आपको सम्बोधित करके भक्त मंडली के बीच कहा करते थे—देखो, हमारा कृष्ण आ गया। यह सुनकर आप बहुत लज्जित हुआ करते थे! एक बार आपने श्री गुरुदेव से पूछा—आपको मुझको ऐसा क्यों कहते हैं? श्री गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा—तुम क्या जानो। इस छोटे से वाक्य में श्री गुरुदेव का कोई विशिष्ट संकेत निहित था।

एक दिन श्री नारायण महाप्रभु श्रीगुरुदेव स्वामी केशवानन्द जी को प्रसाद खिला कर उनके हाथ धुला रहे थे उस समय आपको यह प्रतीत हुआ कि मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया था कि स्वयं रघुनाथ जी गुरुदेव के रूप में मेरी कुटिया में पदार्पण करके भोग लगाते हैं और हम उनके हाथ धुलाने की सेवा करते हैं। ऐसी अनेक कल्पनाएँ हृदय में उठती जा रही थीं और आप हाथ धुलाते जा रहे थे। इतने में श्री गुरुदेव रुक गये और कहने लगे—बेटा, धन्य है भाग्य। आज सभी इस भाग्य की सराहना करते हैं। तुम्हारा यश चिरकाल तक फैलता रहेगा और लोग तुम्हारी पूजा करके अपने जीवन को सार्थक बनायेंगे श्री नारायण महाप्रभु ने श्री गुरुदेव की यह वाणी सुनकर कहा—गुरुदेव, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? श्रीगुरुदेव जी हंस पड़े। पर इस बात पर आगे कुछ भी न प्रकट किया और उस स्थान से चले गये।

एक दिन श्री गुरुदेव संत केशवानन्द जी महाराज समीप के किसी भक्त के यहाँ प्रसाद पा रहे थे। श्री नारायण महाप्रभु बैठे श्री गुरुदेव के लिए माला गूंथ रहे थे। अचानक आप में यह भावना हुई मानों वह श्री गुरुदेव के लिए सुन्दर व्यंजन परोस कर ले आये हैं और श्री गुरुदेव को प्रसाद पाने के लिए कह कर आप उनको पंखा झल रहे हैं। जिस समय आप यह सोच रहे थे कि अचानक श्री गुरुदेव ने आप के कमरे में प्रवेश किया। श्री गुरुदेव को अकस्मात उपस्थित देखकर आपने माला गंथना त्याग दिया और दौड़कर उनको विराजमान करने के लिए आसन ले आये। आसन पर विराजते ही श्री गुरुदेव बोले—बेटा, क्या करूं आज तो पेट बहुत भर गया। नित्य तो केवल एक प्रसाद सम्मुख आता था। आज दो भक्तों का प्रसाद

सम्मुख आ गया। एक भक्त के प्रसाद में विविध व्यंजन के अतिरिक्त श्रद्धा का समावेश था। मैं तो उस भक्त की श्रद्धा से तृप्त हो गया।

श्री नारायण महाप्रभु श्री गुरुदेव जी की इन बातों को सुन कर अच्छी तरह समझ गये कि हम जो अपने मन में सोच रहे थे उसे श्री गुरुदेव जान गये हैं। श्रीगुरुदेव की ऐसी अनेक लीलाएँ देखकर श्री नारायण महाप्रभु को यह दृढ़ निश्चय हो गया था कि गुरुदेव कोई सामान्य कोटि के सन्यासी नहीं हैं अपितु वे भगवान रघुनाथ जी हैं, उनकी दिव्यता व महिमा कोई बिरला भक्त ही जान सकता है। भक्तों की उपस्थिति में आप प्रायः यह कहा करते थे कि गुरुदेव सामान्य कोटि के व्यक्ति नहीं है? वे एक अलौकिक दिव्य पुरुष हैं और बड़े भाग्य से हम लोगों के बीच आ गये हैं। विश्व की दृष्टि से छिपने के लिए उन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। तुम लोगों के हृदय में यदि कुछ कामना हो तो उसके सम्बन्ध में श्री गुरुदेव से परामर्श कर लो! श्री नारायण महाप्रभु के द्वारा सचेत किये जाने पर भी भक्तों ने कुछ ध्यान नहीं दिया।

एक दिन श्रीगुरुदेव ने भक्त मंडली में कहा कि अब मुझे इस शरीर को अधिक काल तक स्थिर रखने की इच्छा नहीं है अतः मैं शीघ्र ही इसको त्यागना चाहता हूं। तुम लोग मेरी यह बात बेटी से गुप्त रखना क्योंकि यदि उसको पता चल जायेगा तो वह मुझसे हटकर बेचैन होगी। श्रीगुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु को अपना सर्वोच्च भक्त समझते थे अतः भक्त के हृदय को दुःखी करना उन्हें प्रिय नहीं था। दूसरी और श्री नारायण महाप्रभु को यह विश्वास था कि श्रीगुरुदेव २० वर्ष तक भक्तों के लिए अभी और शरीर को धारण

रखेंगे। उधर श्री गुरुदेव जी अपने शरीर त्याग का निश्चय कर चुके थे। एक दिन वे प्रयाग के कारपेन्टरी स्कूल में सत्संग कराने गये थे। सत्संग करने के अनन्तर दो बजे गंगा जल आचमन कर श्री गुरुदेव ब्रह्मलीन हो गये। तदुपरांत श्री गुरुदेव का नश्वर शरीर शिवकोटी लाया गया और गंगा तट पर पीपल वृक्ष के नीचे एक चबूतते के ऊपर रखा गया। भक्तों की एक भीड़ श्रीगुरुदेव का अन्तिम दर्शन करने के लिए उपस्थित हो गयी। सभी के नेत्र से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। श्री नारायण महाप्रभु का शोक अवर्णनीय था। श्रीगुरुदेव के ब्रह्मलीन होने के समाचार ने उनके हृदय को वेध दिया। आप बारम्बार श्रीगुरुदेव के शरीर का स्पर्श कर उसे जागृत करने का प्रयत्न करते थे और पुनः बिलख-बिलख कर रो पड़ते थे।

श्रीगुरुदेव सन्त केशवानन्द जी महराज अपने ब्रह्मलीन होने के पूर्व ही बता चुके थे अमुक स्थान पर मेरे शरीर को समाधिस्थ कर देना। आजकल जिस स्थान पर श्रीगुरुदेव की समाधि है, यह उन्हीं का बताया हुआ स्थान है। निदान भक्त मंडली ने यहीं श्रीगुरुदेव जी के शरीर को समाधिस्थ किया। तेरह दिन तक श्री नारायण महाप्रभु शोक मग्न रहे। तेरह दिन तो आपने केवल शर्बत अथवा जल ग्रहण कर व्यतीत कर दिये। इसके पश्चात् आपका दिन केवल शोक-संवेदन में ही बीतने लगा। श्रीगुरुदेव का सत्संग आपको सन् १६४६ के आषाढ़ मास में प्राप्त हुआ था और सत्सङ्ग सन् १६५० के वैशाख मास तक चलता रहा। श्रीगुरुदेव ने ब्रह्मलीन होने के पूर्व कुछ वृद्ध भक्तों को श्री नारायण महाप्रभु की देख-रेख का भार सौंपी था। श्रीगुरुदेव के ब्रह्मलीन होने के अनन्तर ये वृद्ध आपको बहुत समझाते थे पर ज्ञान की अमृत धारा जो पिछले तीन वर्ष से

अनवरत बह रही थी उसे अचानक सर्वदा के लिये बन्द देखकर आपको असहनीय दुःख होता था। आज भी जब कभी श्रीगुरुदेव के अलौकिक चरित्र का स्मरण करते हैं तो आपके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं!

परम पूज्य श्री १०८ श्री केशवानन्द जी महाराज की समाधि लेने के पश्चात् श्री नारायण प्रभु जी ने उन्हीं के आदेशों का अवलम्बन कर भक्ति स्रोत को प्लावित करने लगे। उनके अपूर्व त्याग, पुरुषार्थ, ज्ञान, भक्ति को देखकर लोगों का आश्चर्य होता था।

शिवकोटी के निवासियों ने समझा था कि अब इनकी भक्ति और ज्ञान का पौधा यहीं सूख कर मुरझा जायेगा। शनैः शनैः उसका चिन्ह भी नहीं रह जायेगा। इसकी अल्प आयु तथा सुकुमारता इस भक्ति के कंटकाकीर्ण पथ पर चलने से रोक देगी, किन्तु कहावत सत्य है—

जाको राखे साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय।
बाल न बांका करि सके, जो जग बैरी होय॥

परम पूज्य श्री १०८ केशवानन्द जी महाराज की छत्र छाया आपके ऊपर सदैव रही। आपको कठिन से कठिन बाधाओं एवं विपत्तियों से मुठभेड़ करनी पड़ी, किन्तु आप कभी भी पराजित नहीं हुये, न हिम्मत ही हारे। श्रीगुरुदेव केशवानन्द जी के अमरलोक पधारने के पश्चात् कुछ दिन तो लोगो ने सुझाव दिया कि आप गृहस्थी में रह कर भक्ति करिये। अपने परिवार एवं कुल की मर्यादा को भंग मत करिये। किन्तु समुद्र की मछली कितने दिन कड़ाहे में रह सकती है? सब का प्रयास निष्फल ही रहा।

आपकी भक्ति एवं ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। आर्त्ती, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी भक्तों की टोलियाँ आने-जाने लगी।

आपमें अदम्य उत्साह और पुरुषार्थ था। प्रभु के प्रति प्रगाढ़ स्नेह। प्रभु के गुणगान में रात-दिन व्यतीत करने लगे। न प्रातः का पताः न सायकाल का, न रात्रि का। जब देखिये तब पूजा कर रहे हैं, कीर्तन हो रहा है, सत्संगी बैठे हैं प्रभु का गुणानुवाद हो रहा है। आहार-विहार की तनिक भी आपको चिन्ता नहीं थी। इनकी भक्ति देखकर आश्चर्य लगता था। एकादशी के दिन सदैव आप अखंड कीर्तन करते थे। जेठ की निर्जल एकादशी थी। आपका निर्जल व्रत था। प्रातःकाल अखंड कीर्तन प्रारम्भ किया दूसरे दिन तक एक आसन से बैठ कर जल न पीकर २४ घंटे तक अखंड रूप से कीर्तन करते ही रहे। वैराग्य से परिपूर्ण आपके हृदय में प्रभु के अतिरिक्त दुख-सुख, मान-अपमान का कोई ध्यान नहीं था। केवल अपने गुरु प्रभु की ज्ञान भक्ति के भाव को ही आपको ख्याल था। आपकीनिष्ठा को कोई समझ नहीं पाता था। जो कहते थे करके छोड़ते थे। ध्येय के अटल थे। सूरज चाँद अपना मार्ग बदल दें किन्तु आप अपनी भक्ति की आन को नहीं त्याग सकते थे।

आपकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भक्ति को देखकर कुछ लोगों को ईर्ष्या बढ़ने लगी। ग्राम के प्रधान लोगों ने उल्टा-सीधा खूब पढ़ाया। वह विचार-शीलता को त्यागकर, अपनी मर्यादा की उल्लंघन करके, खुले रूप से भक्ति के विरोधी बन गये। नाना रूप से गुरुदेव श्री नारायण प्रभु जी की भक्ति को विरोध करने लगे। जीवन चरित्र की संक्षिप्त झाँकी है इसीलिए इसका संक्षिप्त वर्णन भी है।

कहते हैं जब समय विपरीत आता है तो मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। राम को प्यार करने वाली कैकयी ने उन्हें १४ वर्ष का कैसे बनवास दे दिया! इसी प्रकार की घटना श्री नारायण महाप्रभु के संग घटी। इस ग्राम के प्रधान, धर्मशील, विवेकी पूर्ण रूप से नारायण प्रभु की विरोधी बन कर सामने खड़े हो गये। नारायण प्रभु की छोटी अवस्था एवं आश्रम में दो चार शिष्यायें थीं—किन्तु आप सराहनीय उत्साह के साथ उन विपत्तियों का सामना करके विजयी हुए। सर्वप्रथम ग्राम के प्रधान ने यह संदेश भेजा कि आप इस मन्दिर को खाली कर दीजिये और जहाँ जाने की इच्छा हो चली जाइये। श्री नारायण प्रभु ने कहा—मेरा तो अनुष्ठान चल रहा है, हम तो अपने साधनों को भङ्ग नहीं कर सकते। इस प्रत्युत्तर में निकालने के लिए नाना कष्ट दिये गये। मन्दिर के सन्मुख मुर्गी काटे, अन्डा फेंक दिया गया, नल काट दिया गया, बिजली काट दी गई—जो नारायण प्रभु को जल पिलाती थी उसको सिखाकर बाहर भगा दिया गया। मंदिर से भगवान को निकाल कर फेंक देने की धमकी दी गई। मंदिर का घन्टा उखाड़ दिया गया। छत पर चढ़ने की सीढ़ी उखाड़ने को चाहा। मदिर के आगे दो चौकीदार बैठा दिये गये कि कोई भक्त अन्दर न जा सके। श्री गुरुदेव नारायण प्रभु ने कहा—आप लोग मन्दिर के आगे चौकीदार बिठा दीजिये। हम वृक्ष के नीचे बैठकर सत्संग कर लेंगे। इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं। ऐसा कहकर दिन भर गङ्गा के तट पर ही रहने लगे। केवल रात्रि में शयन करने के लिए मन्दिर में आते थे।

श्रीगुरुदेव भगवान् प्रभु १५ दिन केवल दूध पीकर रहे। बरसात के दिन थे। दूध आपको पचता नहीं था, बार-बार पेचिश पड़ती थी। गङ्गा जी बहुत दूर थी, दोनों समय गङ्गा जी

जाते थे। स्वयं जल लाते थे। जल के बीच खड़े-खड़े आपकी साधना-शक्ति को कंटकाकीर्ण था भक्ति पथ का क्रम अबाध गति से इसी प्रकार चलता रहा।

जब लोगों का उपद्रव बहुत बढ़ने लगा तब आपने शिव-कोटी के प्रधान को बुलाया तथा सम्मान से बिठाया और कहा—आप चाहते क्या हैं?

हृदय में विष भरा था। नाना प्रकार से लगे विपक्षी सदैव षड़यंत्र रचते, किन्तु उनके षड़यंत्र का भक्ति पर कोई असर नहीं पड़ता था। सारे षड़यंत्र उनके असफल होते चले गये। भक्तों को दुख देने के लिए नाना जाल फैलाये, किन्तु भगवान भक्तवत्सल स्वयं उनको काट जाते थे। एक मास का अखंड कीर्तन तथा प्रभात फेरी का नियम था। वहाँ के निवासियों की राजसी प्रकृति है इसीलिये श्रीगुरुदेव भगवान ५ बजे प्रातः प्रभात फेरी के लिए भक्तों को भेजते थे। किन्तु फिर भी इन मार्गों में साधन भङ्ग करने के लिए झूठा मुकदमा रचकर चला दिया कि नारायण प्रभु के भक्त हमारे बाग में कटहल चुराने आये, जब हमने उन लोगों को मना किया तब नारायण प्रभु सहित भक्तों ने हमको मारा पीटा।

इसी प्रकार भगवान श्री गुरुदेव ने एक वर्ष कार्तिक सन् १९५८ में सीताराम की झाँकी का जलूस निकाला था। तब भी एक दिन पूर्व मुकदमा दायर करके इन्जैक्शन आर्डर लगवा दिया कि नारायण प्रभु जलूस नहीं निकाल सकते। यदि जुलूस निकालेंगे तो हम गोली चलायेंगे। प्रभु जी निर्भीक अपने नियम निष्ठा के पक्के, वह क्यों किसी की ताड़ना से डरते? हजारों भक्तों के साथ जलूस निकला। इसी प्रकार ये लोग कुछ-न-कुछ भक्ति में अड़ंगा लगाते ही रहते थे। नारायण प्रभु निर्भीक होकर

अपनी भक्ति की मर्यादा न भङ्ग हो जाये, इसी प्रयत्न में संल
रहते थे।

आपने एक बार दस दिन का गुप्त वास लिया था। कि
की परछाईं भी नहीं पड़ते देते थे। गुप्त वास से निकलने
पश्चात् आपको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कि
आप अपनी निष्ठा पर अड़े रहे और अपने नियम का पा
करके छोड़ा बल्कि उनको इस नियम को पालन करने के हेतु
दिन भाद्र मास में गङ्गा के बीच खाली नाव पर शिष्या के स
रहना पड़ा। उनकी अलौकिक लीला का दर्शन वहाँ
हुआ।

१९५८ में आपने चार मास के लिए गुप्त वास लिया। इ
आपके बहुत से कठोर नियम थे। सूर्य के प्रकाश में नहीं आ
थे। किसी से मिलते नहीं थे। वे न बोलते थे न लिखते थे
किसी व्यक्ति के सम्मुख नहीं आते थे। दिन भर जल भी न
ग्रहण करते थे। रात्रि में दस बजे एक बार फलाहार लेते थे
दिन भर के उपवास के पश्चात् खाया भी नहीं जाता था। १५
पश्चात् आपकी तबियत अस्वस्थ हो गई। गुफा में अकेले
रहते थे। कोई भक्त सेवा कर नहीं सकता था। रोग का
पता नहीं चल सकता था। आपने सब सहा, किन्तु अ
अनुष्ठान में विघ्न नहीं आने दिया। इसी प्रकार दो म
साधना के भी समाप्त हुये थे। विपक्षी ईर्ष्या से दग्ध हो ही
थे कि आपके द्वारा परम्परा से पूजित प्रतिमा श्री राधाकृष्ण
युगल जोड़ी को उन लोगों ने हरण कर लीं। प्रातः जब श्रीगुरु
को इस घटना का ज्ञान हुआ वह तत्काल समझ गये इन्हीं लो
का कृत्य है क्योंकि वहाँ पर भगवान के चाँदी के बर्तन, कम
आदि को किसी ने नहीं लिया, केवल पीतल की प्रतिमा

से चोर को क्या लाभ। आपने भी इधर-उधर ढुंढ़वा लिया एवं शिष्यवर भी खोज करने में लग गये। पारितोषिक की घोषणा कर दी गई। आपके हृदय में कल्याण की एक ऐसी भावना जागृत हुई कि आपने संकल्प कर लिया कि भगवान मूर्ति का एक बार ही, चाहे एक ही क्षण के लिये हो' दर्शन करें किन्तु करेंगे अवश्य तथा उन लोगों को भी सद्वृत्ति की ओर आकर्षित करेंगे।

अनेक प्रकार से मूर्ति की खोज प्रारम्भ हो गई। संत होने के कारण आपकी स्नेह की यह भावना रही कि असद्वृत्ति का सहारा लेकर किसी से कोई कार्य न करवाया जाय अथवा दंडित न किया जाये। ईश्वरीय प्रेरणा से उसकी भावना स्वतः परिवर्तित हो जाय और वह मूर्ति को दे जाय। एक वर्ष की खोज के हश्चात् जब मूर्ति नहीं प्राप्त हुई तो जो कुछ फलहार लेते थे आपने उसका भी परित्याग कर दिया। दो दिन केवल जल पीकर रहे तत्पश्चात् बहुत आग्रह करने पर प्रातः मट्ठा सायंकाल चाय लेकर रहने लगे। यह साधना अभी तक चल रही है। आपके साथ दस शिष्य भी ऐसे हैं जिन्होंने भोजन का परित्याग कर दिया है। छः मास पूर्व आश्विन में श्री नारायण प्रभु १५ दिन तक केवल जल पीकर ही जीवन की रक्षा की। इन सब के फलस्वरूप मूर्ति चुराने वालों के षड्यन्त्र का पूर्ण पता लग गया। एवं मूर्ति किस प्रकार आ सकती है इसका पूर्णरूपेण ज्ञान हो गया।

मेरे गुरुदेव नारायण प्रभु का त्याग सराहनीय है। मैं उनके चरित्र का जब अवलोकन करती हूं तब हृदय नहीं रुक जाता है और थाह नहीं मिलती।

लाली मेरे लाल की, जित देखो तित लाल।
लाली देखन गई, मैं भी हो गई लाल॥

प्रभु की अलौकिक तपस्या, त्याग, प्रेम ज्ञानमय है। अनु
तेज राशि मुख मन्डल से बरसती है। उनको यदि एक सीमा
बाँधना चाहें तो सीमित करना दुर्लभ सा प्रतीत होगा।

अध्वैर्यु प्रभु का ज्ञान है, को करि सकै बखान।
ज्यों-ज्यों दर्शन करूँ, मिटे अन्धकार अभिमान॥

श्रीगुरुदेव भगवान की लोक कल्याणकारी भावना अत
अलौकिक है। उनके तक पहुँचना बुद्धि के परे है। उनके जी
का प्रत्येक कर्म भक्तों के सुखदायी लोक-कल्याणकारी भावना
निहित रहता है।

राम नाम महायज्ञ

चार मास के कठोर गुप्त वास के पश्चात् आपने श्री
नाम महायज्ञ का आयोजन किया जो अद्भुद् रूप से सफ
हुआ। मायाजाल में फँसे हुए गृहस्थों को भव से पार लगा
के लिए तथा उनमें सद्भावना की जागृति हो, इसी हेतु से
लाख भक्तों से ग्यारह-ग्यारह सवा लाख सीताराम का
कराया उसी की पूर्णाहुति के उपलक्ष में इस विराट आयो
को सम्पादित किया गया। इस यज्ञ के कार्यक्रमों को
विभागों में रखा गया था। प्रथम सप्ताह द्वादस मन्त्र का अख
कीर्तन, द्वितीय सप्ताह, भागवत सप्ताह, तृतीय सप्ताह मा
सम्मेलन, चतुर्थ सप्ताह संत सम्मेलन। इस यज्ञ का अद्

सौन्दर्य दर्शनीय था। जनता की अपार भीड़ से पुण्य गंगा के तट से तेलियरगंज तक पैर रखने की भी जगह नहीं रहती थी। एक्यावन पंडितों द्वारा, एक मास तक आहुति का कार्य-क्रम रहा। श्री नारायण महाप्रभु का यह ध्येय है कि शुभ कर्म के द्वारा ही शुभ फल की प्राप्ति होती है। अतः आप लोग स्वयं कर्म से निरत रहिये जिससे संचित पाप कर्म की राशि भस्म हो जाय। हृदय में ज्ञान प्रदीप जग जाये। आपका प्रत्येक कर्म इसी हेतु से होता है।

श्री भागीरथी महायज्ञ—१९५९

आपका द्वितीय यज्ञ श्री भागीरथी महायज्ञ के रूप में प्रकट हुआ। दिव्य बारह वर्ष की तपस्या की पूर्णाहुति के उपलक्ष में इस यज्ञ की व्यवस्था की गई थी। गंगा, जमुना, सरस्वती जी की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। प्रातः ५ बजे से सायंकाल तक अखण्ड धार से भगवान के सुमधुर नाम का संकीर्तन होता रहता था। एक मास तक एक्यावन पंडितों के द्वारा यज्ञ का कार्य-क्रम चलता रहा। एक मास पश्चात् श्री त्रिवेणी के पुण्य क्षेत्र में श्री गंगा महारानी के स्वागतार्थ उनको आर-पार की माला पहनाई गई थी जिसकी शोभा अवर्णनीय थी। सैकड़ों नाव में जनता बैठी इधर-उधर से स्वर्गीय सुख का आनन्द लूट रही थी। बीच में दो बजरे थे। एक में श्री नारायण महाप्रभु माला को पहनाते चल रहे थे। कुछ भक्त दूध की धारा डालते चल रहे थे। कुछ पुष्प वर्षा करते चल रहे थे। विचित्र झाँकी थी उस दृश्य की।

नारायण महाप्रभु की अद्वितीय साधना

भागीरथी यज्ञ त्रिवेणी क्षेत्र में सम्पादित किया गया था। त्रिवेणी से लौटने के पश्चात् आपकी दशा परिवर्तित होने

लगी। आपका स्वभाव बाल्वत् था। अहोरात्रि बालकों के सदृश मुस्कराते थे। भक्तों से खेलते रहते थे। किन्तु अब स्थिति बदलने लगी। मुख-मण्डल पर अद्भुत तेज-राशि बरसने लगी। भाव एकदम शान्त हो गया और गम्भीर रहने लगे। विशेष रूप से एकान्त पसन्द आने लगा। कुछ सोचते रहते थे। इसी प्रकार दो मास चलता रहा। वैसाख लगने के दो दिन पूर्व ही इन्होंने आश्रमवासी सब भक्तों को एकत्रित किया और कहा—तुम लोगो भक्ति करने, मेरी शरण में आये हो अतः जो हम कहें वही तुम लोगों को करना चाहिये तुम लोगों को परम विरक्त होना चाहिये। यदि कोई परिस्थिति ऐसी आ पड़े कि खाने के लिये केवल नमक पानी मिले तब भी तुम्हें परम प्रसन्न होकर गुरु सेवा में तत्पर रहना चाहिये।

इस वार्तालाप के दो दिन पश्चात् अचानक ऐसी घटना घटी कि प्रभु ने फलाहार का भी त्याग कर दिया। दो दिन तक तो केवल जल पी कर ही रहे। तीसरे दिन भक्तों के बहुत आग्रह करने पर प्रातः मट्ठा और सायंकाल केवल चाय लेनी प्रारम्भ कर दी। पूरे तीन वर्ष हो चुके अपने दस सेवकों के साथ आप इसी प्रकार शरीर को धारण कर रहे हैं। आपकी साधना सबसे कठोर है। कुछ शिष्यों को आपने आदेश दिया कि तुम लोग दिन में एक बार फल ले लिया करो किन्तु आप स्वयं बीच में शरबत या मिश्री या नीबू का पानी भी सेवन नहीं करते।

अध्यात्म केन्द्र

सन् १६५६ की १६ अप्रैल श्री नारायण आश्रम शिवकोटी में अध्यात्म केन्द्र की स्थापना हुई। अध्यात्म केन्द्र की स्थापना श्रीगुरुदेव भगवान ने जनकल्याण की भावना

प्रेरित होकर की है। त्रिवेणी के पुण्य क्षेत्र में अनेक भक्त माताओं को इधर-उधर भटकते देखकर श्री नारायण महाप्रभु का हृदय करुणा से द्रवित हो गया और उनके अन्तःकरण में एक ऐसी कल्याणकारी तीव्र भावना जागृत हो उठी जिसके फलस्वरूप उक्त अध्यात्म केन्द्र की स्थापना हुई। आपने देखा कितनी मातायें इधर-उधर भटकती रहती हैं। केवल गंगा स्नान करती हैं, हर एक सन्त के यहाँ जाकर उनका दर्शन करती हैं। कौन किस सन्त से अच्छा है इस बात की विवेचना में ही अनमोल जीवन का एक मास व्यतीत कर देती हैं। यदि यह एक दुधारी गाय के सदृट किसी सत्गुरु सन्त के चरण में एकनिष्ठा रूपी खूँटे में अपने मन को बाँध देतीं तो कितना कल्याण होता। आत्मस्वरूप होकर स्वयं अज्ञानी बनी हुई। इधर-उधर खोज करती हैं। धनी का पुत्र अज्ञानता के कारण निर्धन बना फिरे यही गति इन लोगों की है। आज इनका सत्य पथ-प्रदर्शक कोई नहीं है, जिससे यह सत्य को जानकर शान्ति प्राप्त कर सकें। यही सब सोचकर आपने अध्यात्म केन्द्र को जन्म दिया।

जब अध्यात्म केन्द्र के प्रथम वर्ष का उद्घाटन हुआ लगभग ढाई सौ माता-पिता जिज्ञासा लेकर श्री नारायण प्रभु की जिज्ञासालय में तृष्णा से छुटकारा पाने के लिए उपस्थित हुए।

श्री नारायण प्रभु का ज्ञान

संक्षेप में नारायण महा प्रभु के द्वारा जो कुछ लेखिका को प्राप्त हुआ है उसी का निरूपण किया गया है। आपका ज्ञान अनुपम, अगाध है। कर्म पर पर विशेष ध्यान आकर्षित करते हैं। आपका ध्येय है कि कर्म के द्वारा ही मानव ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। कर्म के द्वारा ही वह शुभ-अशुभ से मुक्त होकर शिव

(कल्याणकारी) बन जाता है। कर्महीन होकर बैठने से परमात्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। परन्तु कर्म निष्काम होकर करना चाहिए। जब तक ज्ञान नहीं होगा निष्कामता नहीं आ सकती। जान-समझकर केवल कर्तव्यवश और धर्मवश करना है इसीलिए करते हैं। उसमें कोई स्पृहा न रखें तब निष्कामता आ सकती है और हम कर्म के शुभ-अशुभ फल के बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। ज्ञान के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।

और ज्ञान अज्ञान है, ब्रह्म ज्ञान सोई ज्ञान।
जैसे गोला तोप का, करत जाय मैदान ॥

ब्रह्म को प्राप्त किया व्यक्ति ही ब्राह्मण है—ब्रह्म जानाति ब्राह्मणम्ः।

विश्व हमारे ही अन्दर है, हम विश्व के अन्दर नहीं। हम सर्वशक्ति स्वरूप हैं। हम जो चाहे सो कर सकते हैं। दैवीगुण के द्वारा ही हम मानव बन सकते हैं। मानव शरीर होने से ही हम मानव नहीं कहला सकते जब तक की मनुष्यत्व न हो। सतगुरु के द्वारा ही सत्ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। सतगुरु ही जीव से शिव बना सकते हैं। सतगुरु ही सर्वोपरि हैं। उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं—दोनों एक ही है। यह पराकाष्ठा का ज्ञान है। आपका ज्ञान अद्वैत है। संसार में एक आत्मा है। जैसे एक सूत में अनेक मणि। ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, किन्तु अज्ञान के कारण ही हममें भेदभाव की भावना बनी है।

दैवी गुणों के द्वारा मनुष्य विश्व पर विजय प्राप्त कर सकता है—शेर बकरी को एक घाट पानी पिला सकता है।

श्री नारायण प्रभु स्वयं भी सदैव कर्म में प्रवृत्त रहते हैं एवं अपने यहाँ आने वाले आत्म-जिज्ञासुओं को भी सदैव किसी न किसी कर्म के संलग्न रखते हैं क्योंकि आपका ध्येय है कि इनको कर्म में प्रवृत्त रखने से ही इनके अन्तःकरण की शुद्धि हो सकती है। वह व्यर्थ के प्रपच की बातों से बचे रहेंगे। शनैः शनैः शुभ कर्म करने के अभ्यस्त हो जायेंगे। मिथ्या प्रपंच से बचे रहेंगे। निरंतर सत्संग करते रहेंगे तो स्वतः हीं ज्ञान इनकी समझ में आने लगेगा एवं हृदय में बैठ जायेगा। ज्ञान के द्वारा ही इनके हृदय का सब मैल धुल जायेगा और यह ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे। ईश्वर को प्राप्त करने का प्रथम साधन सत्संग है।

सत्संग निज कल्प तरु, सकल कामना देत।
अमृत रूपी वचन कहि, तीन ताप हर लेत ॥

आश्रम के नियम

आश्रम निवासिनी भक्त साधिकाओं पर भी कठिन प्रतिबन्ध रहता है। यों कहिए कुछ भी नहीं है। गृहस्थ आश्रम में भी एक नियम रहता है जिस पर सब परिवार चलता है। जहाँ नियम नहीं है वहाँ संयम नहीं। जहाँ संयम नहीं वहाँ सुख नहीं। जहाँ सुख नहीं वहाँ शान्ति नहीं है। आश्रम तो शान्ति प्राप्त करने का केन्द्र है। वहाँ बिना नियम के कहाँ चल सकता है ?

१—गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना ही इस आश्रम का प्रमुख नियम है। उनके आदेशानुसार चलना प्रथम धर्म, पुण्य, तीर्थ-व्रत समझा जाता है। गुरुदेव की आज्ञा पालन करना

ही मुख्य सेवा समझी जाती है। वही सब साधन कर साध्य मीना जाता है।

२—आश्रम के निवासी चाहे वह स्थायी रूप से निवास करें या अस्थायी रूप से विना भगवान गुरुदेव के आदेश के कहीं भी कोई नहीं जा सकता और न किसी से मिल सकता है।

३—आश्रम की साधिकाओं को अधिक बोलना वर्जित है। केवल अपने कार्यों से ही मतलब है।

४—जो घर का परित्याग करके आ गयी हैं बिना गुरुदेव की आज्ञा के निजो परिवार वालों से भी सम्बन्ध नहीं रख सकती।

५—ग्रीष्म काल में प्रातःकाल चार बजे तक उठ जाना, शरद् ऋतु में पाँच बजे तक उठ जाना परमावश्यक है। उठने के पश्चात् सर्वप्रथम गुरुदेव भगवान की वन्दना की जाती है। तत्पश्चात् नित्य नौमित्तिक कार्य प्रारम्भ होते हैं।

६—आश्रम में मान-अपमान के दुख से ग्लानित होकर रोना, बड़बड़ाना, हँसना और बोलना मना है। जो इस नियम को भंग करता है उसको श्रीगुरुदेव के द्वारा विशेष नाम जपवाया जाता है।

श्री नारायण महाप्रभु अपने बनाये हुए नियमों का स्वयं भी पालन करते हैं और साधिकाओं से भी करवाते हैं। जो कोई शुभ कर्म जनता से करवाना चाहते हैं पहले वह स्वयं करते हैं तब साधिकाओं से करवाते हैं और फिर जनता से।

संकीर्तन महायज्ञ

१९६२ के जनवरी मास में त्रिवेणी क्षेत्र के पुण्य तट पर श्री संकीर्तन महायज्ञ हुआ था। इसमें हजारों जनता ने भाग

लाख राम-राम लिखकर यज्ञपुरुष के चरणारविन्दों में चढ़ाया था। लगभग चार करोड़ राम राम लिख कर चढ़वाया था। वाहर की जनता ही से नहीं लिखवाया गया और चढ़वाया गया वरन् आश्रमवासी भक्तों से भी श्रीगुरुदेव भगवान ने राम-राम लिख-कर चढ़वाया था। यज्ञशाला जनता से खचाखच भरी रहती थी। अपूर्व अवर्णनीय एक मास तक स्वर्गीय आनन्द वरसता रहा। जैसे कोई पुण्य विक्रय की दुकान हो। एक ओर भक्त आ रहे हैं, राम-राम चढ़ा रहे हैं, घंटी वज रही है, आरती हो रही है। अद्भुत रस बरस रहा था। दूसरी ओर एक मास का अखंड कीर्तन चल रहा था। हरे राम की मङ्गलकारी, रसमय ध्वनि से पंडाल गुञ्जरित हो रहा था। अखंड दीपक जल रहा था। प्रेम में विभोर राम-राम कहने में भक्त तल्लीन थे। तीसरी ओर मध्यान्ह में रामायण का सत्संग तथा प्रवचन होता था।

कर्मपरायणता और धर्मज्ञता आपके चरित्र का विशेष गुण है। आत्मज्ञान का सुन्दर निरूपण करके प्रत्यक्ष ज्ञान का अनु-भव कराते हैं। श्रीगुरुदेव भगवान जो कहते हैं वही करते हैं और उसका प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं यही आपके ज्ञान की अलौकिकता है। जीवन की दुर्गमताओं से आप कभी भी हतो-त्साहित नहीं होते। जब से भक्ति प्रारम्भ की है तव से आज तक धैर्यपूर्वक आपने कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना किया है।

श्रीविष्णु महायज्ञ

इसी वर्ष (१९६२ में) गत एक मास पूर्व श्रीविष्णु महायज्ञ में जनता से तुलसी पत्र चढ़वाने में आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु आपने अपने संकल्प का कभी परित्याग नहीं किया। प्रत्येक भक्त से दस-दस हजार तुलसी पत्र

भगवान विष्णु के सहस्त्र नाम पर चढ़ाया था। तुषार पड़ने से उस समय तुलसी भी अप्राप्य थी। ६ मई, १९६२ वैसाख सुदी षष्ठी से यज्ञ प्रारम्भ करवाना था। अधिक से अधिक भक्तों से तुलसी पत्र चढ़वाना था और उधर तुलसी पत्र का बिल्कुल अभाव, विकट परिस्थिति थी। किन्तु श्री नारायण प्रभु ने अदम्य उत्साह, अपार साहस, प्रबल आत्मबल के आधार पर एक हजार भक्तों से एक करोड़ तुलसी पत्र चढ़ाया।

यज्ञस्थली का मनोरम सौंदर्य, पवित्रता, भागीरथी का मन्द गति से प्रवाहित होना, श्वेत बालू, हृदय को यों ही बरबस अपनी ओर खींच लेता था। ६ मई वैसाख सुदी षष्ठी से यज्ञ प्रारम्भ हो गया। वेद मन्त्रो की ध्वनि से यज्ञस्थल इस पार से उस पार तक गूँज उठा—भक्तों की अपार भीड़ लग गई। सच्चे निष्ठावान भक्तों की परख भी हो गई। जो सच्चे थे वह दुर्गम घाटियों को पार करते हुए अपने प्रिय प्रभु के पास पहुँच ही जाते हैं जो कायर होते हैं वह मार्ग से ही लौट जाते हैं। प्रातः से सायकाल तक भगवान विष्णु के सहस्त्र नाम पर निरंतर तुलसी पत्र चढ़ता ही रहता था। घंटे और शंख की ध्वनि यज्ञशाला को गुञ्जरित करती रहती थी। देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो दूसरी वैकुण्ठपुरी के निर्माण हो गया हो। हवन का धूम्र वायु मण्डल को सदैव पवित्र करता रहता था। रात्रि भर अखंड कीर्तन चलता था।

इस यज्ञ में ग्यारह दिन के कार्यक्रम का आयोजन था। इसी प्रकार अनवरत रूप से आश्रम में भी नित्य-प्रति कुछ न कुछ नैमित्तिक कार्यक्रम चलते ही रहते हैं।

—:o:—

आत्म-योग

भाग १

॥ श्रीगुरवे नमः ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम-देव देव ॥

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

परम प्रेमास्पद भक्त जन,

आँधी बड़े जोरों से चल रही है। भगवान् सद्गुरु अपने भक्तों की परीक्षा ले रहे हैं कि मेरे भक्त कच्चे हैं अथवा पक्के।

भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा है—

जब अर्जुन एकदम शिथिल होकर कर्महीन बन जाता है। तब प्रभु समझाते हैं कि हे अर्जुन तुम तो निमित्त मात्र हो। यह सब तो मरने वाले ही हैं।

इसी प्रकार त्रिवेणी पर बैठे-बैठे ध्यान करते समय हृदय में आया कि मेरी कितनी ही आत्माएँ अनेक रोग-शोक आदि व्याधियों से त्रस्त हैं। इनको किस प्रकार सुख प्रदान किया जाय जो सुखी है अच्छा ही है। जिनके पास भोजन है वह तो स्वयं खा लेगा उसको खिला देना कौन-सी बड़ी बात है? अतः अनेक बार विचार करने के पश्चात् जब हृदय नहीं माना तो इस कार्य को कर्म रूप में परिणत किया। ईश्वर चाहे तो अपात्र को पात्र भी बना देता है। आज तो केवल विचार-विनियम के लिए आपको बुलाया है। यदि कोई अपने अनेक जन्मों के दुख का निवारण करना चाहे तो उसकी क्या औषधि है? अनेक महापुरुषों ने अनेक-अनेक जन्म लेकर भव-सागर से पार होने का समय-समय पर उपाय बताया किन्तु सरलता से कोई भी अभी तक पार न हो सका।

यदि आप लोगों को अच्छा लगे तो इस ज्ञान के द्वारा लाभ उठा सकते हैं अशांति-अशांति में ही श्वेत चादर ओढ़कर चल देंगे। जब तक मानव अपने को नहीं समझेगा तब तक वह सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे हमारी आँख में काजल लगा है हम धोती के पल्ले से उसको देखना चाहें तो नहीं देख सकते। उसको देखने के लिए शीशा ही लेना पड़ेगा। यद्यपि काजल हमारी देखने वाली आँखों की पलकों में ही है।

हमारे सामने प्रश्न यह है कि हम अपने वर्तमान जीवन में अपने अनेक जन्मों के दुखों से कैसे निवृत्त हो सकते हैं।

यों तो आप अनेक सन्त महात्माओं की बातें सदैवा से सुनते ही आये हैं किन्तु बहुत बड़ी लम्बी अवधि के अन्दर असमर्थ जीव किस प्रकार शीघ्र से शीघ्र अपने स्वरूप की प्राप्ति कर सके।

गुरुदेव भगवान कहते थे–जो कुछ भी होता है इसी वर्तमान में होता है अनेक पुस्तकों में आत्मा न जाने कितने ढंग से बताई गई है जैसे एक आलू का विभिन्न भाषाओं में कई नाम है उसी प्रकार आत्मा भी है।

आत्मा का दर्शन होना। आत्मा का नाम आप बहुत दिनों से सुन रहे होंगे किन्तु मेरा यही कहना है कि आत्मा क्या है— वायु है, चिड़िया है—आप कहेंगे—यही श्वासा जो शरीर में स्थित है वही आत्मा है। हम इसको नहीं। मानते। गीता में भगवान् ने कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

नहिं काट सकते शस्त्र इसको, अग्नि से नहिं दग्ध हो।
नहिं जल गला सकता, पवन से सूखता न कभी अहो॥

अनुवादक—ब्रह्मर्षि नारद

हम जो कुछ भी बतायेंगे एवं अन्य पुस्तकों में आपने जो कुछ पढ़ा है उसमें बहुत अन्तर है जैसे कहा है—आत्मा अजर, अमर, अविनाशी है। यदि वह ऐसी वस्तु है तो आप उसे क्यों नहीं दिखाते? जैसे गर्मी आई, ऐसा कहते है, परन्तु देख नहीं सकते। गर्माहट का अनुभव कर सकते हैं परन्तु स्पर्श नहीं कर सकते। किन्तु एक यह नहीं कहते कि हम घर को

त्याग कर हिमालय में चले जाएं। वरन् अन्त काल में ही थोड़े दिनों की सत्सङ्गति से हम इसको प्राप्त कर लें। जैसे जल की तरंग एवं भँवर एक ही हैं केवल अज्ञानवश दो वस्तुओं का आभास होता है। इसी प्रकार आत्मा है। वह हमसे कोई अलग वस्तु नहीं है इस तन में प्राण होना परमावश्यक है इसी प्रकार आत्मा को जानना भी परम आवश्यक है। जैसे एक मनुष्य नोट जलाकर तम्बाकू पिये यह कोई बुद्धिमानी नहीं है। इसी प्रकार यह चिन्तामणि रूपी तन मिला है उसको हम विषय भोगो में बिता दें अथवा पारस पत्थर पाकर उसको मसाला पीसने की बटिया बना लें। भगवान ने महान् कृपा करके हमको मानव जीवन कल्याण के लिए दिया। उसको प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक करो। अपने आपको अपने वश में करो।

इसका आशय क्या है? हम अपने-आपको अपने में कैसे वश करें रामायण में कहा—

करौ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकइ नाम गुण गाई॥

इसका साधारण अर्थ यह है कि श्रीराम जी स्वयं अपने नाम की महिमा नहीं गा सकते। फिर हम उसकी बड़ाई कैसे करें। इसका गूढ़ अर्थ यह नहीं है वरन् कुछ और ही है।

लोग कहते हैं कि सिद्ध पुरुष हवा में रहते हैं। यदि ऐसा है तो वेद-शास्त्र की उत्पत्ति कहाँ से हुई? यदि सब वन में चले जायँ तो आप किसका दर्शन करेंगे?

गुरुदेव भगवान कहते हैं किसका श्रवण कच्चा है उसका निध्यासन का आभ्यास मनन सब कच्चा है।

हमें ज्ञान किस प्रकार होगा? अनुभवी व्यक्ति ही यदि कोई आपको बताये तो आप उसका अनुभव शीघ्र ही कर सकते हैं?

अपने निज स्वरूप को प्राप्त करना एवं आत्मज्ञान को जानना मनुष्य जीवन का परमावश्यक अंग है। चाहे गृहस्थ हो, चाहे योगी हो हम आत्मज्ञान को प्राप्त कर हर एक व्याधि से मुक्त हो सकते हैं। अपनी शक्ति को न जानने के कारण यह संसार उनको महान् भयवह, अपार, अथाह दिखाई देता है। यहाँ न कोई मैं है न कोई तू है। जैसे दो बाँसों को जलाने पर केवल राख ही बचती है उनका अस्तित्व मिट जाता है उसी प्रकार ज्ञान होने के पश्चात् .... मैं .... तू ....का भेद नहीं रह जाता।

यदि यों कहिए कि क्या ब्रह्म ज्ञान कोई समझाने की वस्तु है। क्या ढाई साल में कुछ हो सकता है। किन्तु समझाने का तरीका है—

बुरे हो न भले हो, मिले हैं न जुदे हैं,
बन्द हो न खुले हो केवले केवले।

यही, जानकर करने योग्य वस्तु है।

संसारी जीव सोचता है, मेरे पास हाथी हो, घोड़ा हो, धन हो, बच्चे हों यही परम सुख है। किन्तु सत्य कुछ और ही है। उसके हृदय को टटोलो वह कितना दुखी है। कुछ न कुछ अभाव सर्वदा रहता है। चाहे वह यही कहेगा कि हे भगवान् मैंने भजन नहीं किया। हरि भक्त आत्मज्ञानी बाहर से चाहे कितना भी दुखी प्रतीत हो किन्तु उसका हृदय परमानन्द से पूर्ण रहता है। जैसे श्री दशरथ जी।

"परमानन्द पूरि मन राजा।"

आप कह सकते हैं कि समय पाकर हम जान जायेंगे। परन्तु समय का कोई ठिकाना नहीं। किसी महात्मा में परम शान्ति है। आप कह देंगे वह जादू जानता है। इसीलिए लोग उसके चरणों में विलीन हो जाते हैं। जैसे भगवान श्रीकृष्ण को कहते हैं वह वंशी सबको मोहित कर लेते थे। वह तो वही स्वरूप थे। भक्त भी श्रीराम को भजते-भजते राम स्वरूप हो जाता है, हम अन्य कुछ न करें। राम राम जपते-जपते जीव ऐसे हो जाता है कि लोग स्वयं ही उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। हमारे माता-पिता, बुद्धिमान शिक्षित जन जो इस मार्ग पर चलते हैं वह तो चलते ही हैं किन्तु जो नहीं चलते वे अवश्य चलें।

दो०—पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोइ।
डाई अक्षर प्रेम का पढ़ें सो पंडित होय॥

ढाई का क्या अर्थ है ? इसमें भी गूढ़ रहस्य है ! सात अक्षर क्यों नहीं कह दिया। आपको गहराई में पहुँचना चाहिये। इसी प्रकार भक्ति-सागर में कहा गया है—

क्षर—अक्षर—निरक्षर।

यह एक ऐसा शब्द है जिसको लिख कर भी नहीं लिखा जा सकता। क्षर-अक्षर यों तो गीता में भी दिया गया है, पर आपने कभी इस गहराई का अनुसंधान करने का प्रयास नहीं किया। अनेक जन्म के पुण्यों का फलस्वरूप सतगुरु की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार किसान एक निश्चित ऋतु में अनाज उत्पन्न करके बारह महीने खाते हैं उसी प्रकार यदि एक बार

हम अपने निज स्वरूप को प्राप्त कर लें तो सदैव के लिए सुखी हो जायेंगे।

प्राचीन युग में, जैसे सत्ययुग व त्रेतामें, प्राकृतिक रूप से ही मनुष्य कर्म रूप स्वयं होते थे, परन्तु आजकल तो कर्म प्रधान है, बिना सत्कर्म किये कल्याण सम्भव नहीं। मैं तो कौन सी वस्तु हूँ किन्तु फिर भी जिससे मुझको लाभ हुआ उसे आप लोगों के सम्मुख सूक्ष्म रूप से उपस्थित करते हैं। लोग कहते हैं कि जो पेड़ में लटक कर अथवा पानी में डूबकर मरता हैं वह आत्मघाती है। परन्तु वास्तव में अपने निज स्वरूप को प्राप्त न करना ही आत्मघाती बनना है। जैसे हम मोतीचूर के लड्डू का अनेक प्रकार से वर्णन करें परन्तु वास्तव में न स्वयं खाया है न आपको ही खिलाया है। मेरा विचार तो ऐसा है कि स्वयं खाऊँ एवं साथ में अनुभव करते हुए आपको भी खिलाऊँ। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के हेतु अवधि निश्चित नहीं है परन्तु जिज्ञासु के लिए अवधि देनी ही पड़ती है।

अगले बार में पथ्य बताया जायेगा। दवा के साथ पथ्य की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य अपना-अपना कर्म एवं स्थान लेकर आता है जो जिसका अधिकारी है उसको वही रुचिकर होता है।

श्री गुरुदेव भगवान की जै

श्री गुरुवे नमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम देव देवः॥

मकान बनाने के पूर्व उसकी नींव खोदी जाती है। तत्पश्चात्

दीवार, खिड़की, दरवाजे यथास्थान लगाये जाते हैं। यही मेरा कहना है। जो जानना, सीखना, समझना चाहते हैं वह नियमित रूप से आवें सीखें और समझें। आज आयें फिर १५ दिन पश्चात् आयें, इस प्रकार नहीं हो सकता।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवा।

पहले यह कह कर समाप्त किया था कि द्वितीय कक्षा में यह बताया जायेगा कि इस आत्मज्ञान को सीखने का पंथ क्या है? सरल से सरल साधन क्या हो सकता है? मैंने बहुत विचार करके नाम जप ही सबसे सुगम साधन रखा है।

संसार में अनजान में छोटे-छोटे पाप बहुत से होते हैं हमें आभास-मात्र भी नहीं होता। हम उनको पाप भी नहीं समझते हैं। बड़े पाप भी होते हैं जिनको मनुष्य न स्वयं करना चाहता है न दूसरों से ही कराने का प्रयास करता है। मैंने सोचा, यदि मैं भी उन्हीं पापों को मना करूँ तो क्या हुआ? अतः सुगम सरल साधन नाम जप ही रख दिया।

एक महात्मा जी थे। वह बड़े सच्चे सरल हृदय के संत थे। कोई मकान बन रहा था। एक दिन उसी में महात्मा जी और एक मिस्त्री दबकर मर गये। नामदेव नाम के एक महात्मा जी को इस बात का ज्ञान हुआ। वे महात्मा जी की शक्ति से परिचित थे। उन्होंने सोचा ऐसे महान् पुरुष की सामाधि बननी चाहिये जिसका स्पर्श करके लाखों का कल्याण हो सके। किन्तु नामदेव जी वहाँ आने पर महात्मा जी और मिस्त्री की हड्डियाँ मिलकर एक होनें के कारण कुछ समझ न पाये कि कौन सी मिस्त्री की हैं कौन सी महात्मा की। कुछ विचार करने

पश्चात् उन्होंने समस्त हड्डियों को एकत्रित करके एक-एक हड्डी कान में लगाना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा जी की हड्डियों में से विट्ठल-विट्ठल आवाज आ रही थी। मिस्त्री की हड्डियों में कोई आवाज न थी। इसी नाम के आधार पर समस्त हड्डियों को एकत्रित करके समाधि का निर्माण किया।

हम लोगों को इस प्रकार नाम जप करना चाहिये कि हम उसके द्वारा निज स्वरूप की प्राप्ति कर लें। इसीलिए कहा गया है—

दो०—सत गुरु बड़े हकीम हैं अन्जन है सतसंग।
नाम सलाई फेरिए कटे मोतिया विंद॥

हममें आप में क्या अन्तर है? आप क्यों किसी महात्मा के पास जाकर प्रणाम करके अपने स्वरूप की प्राप्ति करते हैं—मनोकामना की पूर्ति करते हैं और अन्य के पास नहीं।

दो०—घट घट मेरे साइयाँ सूना घट न होय।
बलिहारी वा घाट को जा घट परगट होय॥

जिस प्रकार एक छिपी अग्नि होती है और एक प्रकट अग्नि। छिपी अग्नि की कोई उपयोगिता नहीं है। इसी प्रकार एक छिपा ब्रह्म है और एक प्रकट ब्रह्म है। यों तो पशु-पक्षी सब में ब्रह्म है परन्तु किसने अनुभव कर लिया है कोई कुछ भी नहीं जानता।

प्रातःकाल गङ्गा जी स्नान करने गये थे। वहाँ पर चार मुर्दे सफेद चादर में लिपटे पड़े थे। हमने सोचा—हे ब्रह्म तूने अपने

को नहीं पहचाना इसीलिये तुम्हारी यह गति है। दाल-भात खाकर ही जीवन व्यतीत कर दिया।

जैसे साफ दर्पण में अपना प्रतिबन्ध ज्यों का त्यों दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार नाम जप के द्वारा हृदय रूपी दर्पण साफ हो जाता है और हम संसार की वस्तुओं की यथार्थता समझने लगता है।

"कलयुग केवल नाम अधारा।"

आप लोगों ने कितने-कितने महापुरुषों के दर्शन एवं उनकी वाणी का श्रवण किया है। उन माहात्माओं के वचन एक प्रकार से हीरा-मोती के सदृश है। उन हीरा-मोतियों को उठाकर मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि नाम का अवलम्बन करके, अपने स्वरूप को प्राप्त करके, अनेक प्रकार के रोग, व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं। मैं तो बालक हूं फिर भी सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश कुछ वाणी आपके सम्मुख रख रही हूँ, बड़े संत महात्माओं की वाणियाँ अनमोल होती हैं।

लोग कहते हैं हमारे पास धन है, बाल-बच्चे हैं, आत्म-ज्ञान सुनने-समझने की क्या आवश्यकता है? किन्तु हम कहते हैं कि इन्द्र जैसा पति हो, कुबेर जैसा धन हो, फिर भी मनुष्य को निज स्वरूप की प्राप्ति परमावश्यक है। जैसे गृहस्थ आश्रम में सर्वप्रथम बालक को शिक्षा देने के पश्चात् अन्य कार्य किये जाते हैं उसी प्रकार शास्त्रों में कहा गया है कि सर्वप्रथम आत्मज्ञान को सीखने-समझने के उपरान्त कुछ करना चाहिए।

दो०—जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पार।
जो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥

कहाँ तक कहा जाय—यह मेरा कहा हुआ वचन नहीं है वरन् ४०० वर्ष पूर्व गोस्वामी जी ने कहा था। संक्षेप में इसका अर्थ है कि जिसने आत्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न नहीं किया वह आत्महत्यारा है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

जैसे आप मन-बे-मन जिस प्रकार से भी पाप करिये उस पाप का फल अवश्य मिलेगा, इसी प्रकार पुण्य जिस प्रकार भी करेंगे फल अवश्यमेव प्राप्त होगा। नाम तो जपिये, चाहे मुझे गाली देकर, चाहे पलंग पर सोकर जपें।

महापुरुषों की बात तो छोड़िए, कोई भी आपका हितैषी सज्जन आत्मज्ञान को समझता है तो आप उसे कर्म में परिणत करें। आप अपना समस्त बोझ उसी के ऊपर डाल दें। हम आपके स्थान पर होते और इसी प्रकार कोई मुझे बताता तो हम उसके सिर पर चढ़कर सब बातें समझ लेते—जान लेते।

महान् पुरुषों की जीवनी मात्र के अध्ययन से महान् शक्ति आती है एवं जीव उसी साँचे में ढलने लगता है। फिर महान् पुरुषों के सत्संग एवं उनके वचन की तो कोई महिमा ही नहीं कह सकते। नाम जप की आज विशेष महिमा है क्योंकि यही आप लोगों का पंथ है। चेतन एवं जड़ दो प्रकार के नाम हैं—जैसे इक्का अथवा कार दोनों ही मन्तव्य स्थान पर पहुँचा देंगे अन्तर केवल इतना है कि इक्का एक घन्टे में और कार १५ मिनट में पहुँचायेगी। इसी प्रकार नाम जप भी जड़ एवं चेतन है। जड़ में समय लगता है, चेतन से शीघ्र लाभ होता है। यदि मनुष्य महा-

वाक्यों को सुनकर उस पर चले तो वह इस संसार में कठिन से कठिन कार्य कर सकता है।

एक बड़े भारी त्रिकालदर्शी निज स्वरूप में स्थित एक महान् आत्मा थीं। अनेक प्रकार के जीव उनके सत्संग में आते थे। एक निष्ठावान भक्त भी नित्य कोने में बैठकर सत्सङ्ग किया करता था। वर्षा तो प्रत्येक स्थान पर होती है। परन्तु जिस उपजाऊ भूमि में बीज रहता है वह शीघ्र फलित हो जाता है और बंजर भूमि में बीज रहते हुए भी फलित नहीं होता। इसमें वर्षा का क्या दोष ? यह तो ग्रहण करने वाले की उपयोगिता पर निर्भर है।

एक दिन उस भक्त ने अपने हृदय में विचार किया कि महात्मा जी कहते हैं प्रभु की आराधना करो एवं अमुक वस्तुओं का त्याग करो। ऐसा सोचकर एक सुन्दर सी गणेश जी की प्रतिमा बनाकर पूजा करना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन पूजा करने के पश्चात् किसी कार्यवश कमरे में लौट कर गये तो देखा कि एक चूहा गणेश की प्रतिमा पर चढ़ कर चावल खा रहा है। उसने सोचा, अरे यह चूहा ही इससे बड़ा होने के कारण चावल खा रहा है। वह मूर्ति कुछ नहीं बोली। यह सोचकर उसने चूहे की पूंछ पकड़कर उसे खूंटी में बाँध दिया और बहू जी से कहा, अब हम लोग इन्हीं की पूजा करेंगे। थोड़े दिनों तक इसी प्रकार चूहे महाराज की पूजा होती रही। जब लोग उनका मजाक बनाते तो वे कहते कि मैं चेतन देवता की पूजा करता हूँ, यह कोई बुरा काम नहीं।

एक दिन ऐसा हुआ कि चूहे महाराज कूद रहे थे इतने में बिल्ली महरानी ने उन्हें आ दबोचा। भक्त ने चूहे को

गति देखो तो बिल्ली को खूँटी से बाँध दिया। अब बिल्ली की पूजा होने लगी। एक दिन अचानक एक कुत्ते ने बिल्ली को देख लिया। देखते ही वह बिल्ली पर झपट पड़ा। बिल्ली महारानी अपनी जान बचा कर भागी। भक्त यह सब देखकर कुत्ते की ही उपासना करने लगा।

सतगुरु पहले साधारण मोटी-मोटी बातें साधक को सिखाते हैं। हर एक वस्तु के लिये कुछ न कुछ समय लगता है। पका हुआ भोजन करने में भी कुछ समय लगता है। फिर ब्रह्मज्ञान इतनी जल्दी कैसे सिखाया जा सकता है? परन्तु फिर भी महान् पुरुष दया करके शीघ्र बताने का प्रयास करते हैं। भगवान् श्रीराम जी परम पुरुष आत्मस्वरूप सर्व सामर्थ्यवान थे फिर भी लोक-व्यवहार के लिये गुरु वशिष्ठ ने उनको निज स्वरूप का ज्ञान दिया। सब कुछ स्पष्ट खोलकर किस प्रकार रखा जा सकता है? धीरे-धीरे अपने स्वरूप को पहचाने। एक दिन के लिए तो उत्साह, वैराग्य, जिज्ञासा सभी को हो जाती है।

चलो चलो सब कोई कहै, पहुँचे बिरला कोय।

दृढ़ निष्ठ जिज्ञासा हो तभी कल्याण हो सकता है। यदि आप कोई कर्म न करें तो यह उचित नहीं। माताओं की स्थिति देखकर हृदय में अत्यन्त पीड़ा हुई इसी कारण मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया।

छोटे पालने में हाथी नहीं बिठाया जा सकता। क्रमशः ही सब कुछ हो सकता है। इस लिए कहा है संतों के द्वार पर कुत्तों की तरह पड़े रहो, न जाने किस समय दया-दृष्टि हो जाय।

अब हम पूर्व विषय को प्रारम्भ करेंगे। अब नित्य कुत्ते की पूजा होने लगी। एक दिन बहूजी रसोई-घर में पराठे के लिये एक सेर आटा सानकर घी लाने के लिये दूसरे कमरे में गई। इतने में कुत्ता आटा लेकर भागने लगा। इतने में बहूजी ने प्रवेश किया। कुत्ते की यह चाल देखकर वह वेलना लेकर दौड़ी। इधर बाबूजी ने प्रवेश किया। उन्होंने जब ऐसा देखा तो उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने सोचा सबसे बड़ी देवी मेरे ही घर में विराजमान है। ऐसा सोचकर अपनी स्त्री की ही पूजा करना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन बहूजी से कोई त्रुटि हो गई। बाबूजी अत्यधिक क्रोधित हुये। क्रोध के आवेश में बहूजी को खूब पीटा। जब आवेश समाप्त हुआ तो वह सोचने लगे अरे। मैं ही सबसे बड़ा हूं। उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ कि आज तक मैंने कितनों की पूजा की। आज मैंने पहचाना। मैं ही प्रमुख शक्ति हूँ—ऐसा सोच कर उनको बड़ा ही सुख मिला। वह तत्काल महात्मा जी के पास गये और कहा आपने ठीक ही बताया था कि निज स्वरूप को प्राप्त करना परम आवश्यक है। जब तक मानव अपने को नहीं पहचानता तब तक सुखी नहीं हो सकता।

कभी आइये कभी न आइये, लाभ नहीं हो सकता। जैसे दही ही मथने बैठो। थोड़ी देर मथो थोड़ी देर बन्द कर दो तो मक्खन ठीक नहीं निकल सकेगा। अतः यथासमय आना परम आवश्यक है।

दो०—निराकार भगवान का सगुण रूप साकार।
"नयद" के नारायण भव भव भंजन हार॥

श्री गुरवे नमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देवः ॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा, कृष्णाकृष्णा हरे हरे ॥

एक महात्मा जी पधारे थे । गुरुदेव भगवान ने पहले महात्मा जी का अभिवादन किया ।

महात्मा जी ने अपने श्री मुख से आप लोगों को अपनी अमृत वाणी सुनाई । अब मैं बालक भी आपकी सेवा में कुछ रखती हूं ।

द्वितीय कक्षा में मैंने नाम के ऊपर ही आप लोगों के सम्मुख कुछ रखा था आज फिर रख रहे हैं ।

यों तो नाम की महिमा का क्या वर्णन किया जा सकता है ।

कहउ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहि नाम गुन गाई ॥

इस पर आप लोगों को एक दृष्टान्त सुनाते हैं । कहीं पर सत्सङ्ग हो रहा था । उसमें कोई एक राजा भी आकर एक तरफ बैठकर सत्सङ्ग सुन रहा था । सत्सङ्ग के मध्य में ही गुरु वशिष्ठ जी पधारे । उनको देखते ही समस्त जनता स्वागत हेतु खड़ी

हो गई। किन्तु राजा खड़ा नहीं हुआ। श्री नारद जी इस लीला का अवलोकन कर रहे थे। ज्योंही सभा का विसर्जन हुआ वह वशिष्ठ जी के पास गये। उन्होंने राजा की घृष्टता एवं उनकी अपमानता का अभियोग राजा पर लगाया। तब भी वशिष्ठ जी रुष्ट न हुये। वह बार-बार पुनरावृत्ति करते रहे। उससे कहा अपने शिष्य भगवान रामचन्द्र से कहिये उस राजा को दंड दें वशिष्ठ जी भी उस राजा पर क्रोधित हुये एवं श्री रामचन्द्र जी से ऐसा कहने के लिये तत्पर हो गये। इधर नारद जी ने राजा से भी जाकर कह दिया कि तुमने वशिष्ठ जी का अपमान किया वह अब तुम्हें प्राण दंड श्री रामचन्द्र जी से दिलवायेंगे। अतः तुम हनुमान जी की मां के पास जाओ और चिरंजीवी होने का आशीर्बाद ले लो। वह माँ के वचन का पालन करेंगे। राजा वहुत घबड़ाया और प्रातःकाल ही उठ कर श्री हनुमान जी के घर पहुँचा और माँ अंजिनी ने ज्योंही दरवाजा खोला वह साष्टांग प्रणाम करके रोने लगे। माँ के बहुत पूछने पर उसने चिरंजीवी होने का आशीर्वाद लेकर अपनी मूर्खता एवं अहंकारिता कहानी सुनाकर प्राण रक्षा का वरदान माँगा। माँ उसके दुख से बहुत द्रवित हुई। जब हनुमान जी घर पर पधारे, माँ को उदास देखकर कारण पूछा। माँ ने सारी कहानी कह सुनाई।

हनुमान जी बड़े असमंजस में पड़े। इधर प्रभु श्री राम और गुरु वशिष्ठ उधर माँ। तब उन्होंने राजा को बुलाकर कहा इसका कोई उपाय नहीं है केवल नामजप ही है। कल प्रातः काल ही तुम स्नान चंदन आदि का लेप करके सरयू किनारे बैठ कर रघुपति राघव राजा राम जपते रहना। चाहें कुछ भी हो जाय एक क्षण के लिये भी न रुकना।

इधर गुरु वशिष्ठ जी ने प्रभु को उस राजा की अहंकारिता की कहानी सुनाकर उसे प्राण दंड देने के लिये कहा। प्रभु ने अनिच्छा से गुरु की आज्ञा को स्वीकार किया।

दूसरे दिन गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार वह राजा को मारने के लिये गये। राजा बढ़े ही प्रेम के साथ रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम। जप कर रहा था। प्रभु का हृदय उसकी प्रेम-विह्वलता देखकर पिघल उठा। प्रभु तीर न चला सके। मध्यान्ह में फिर हनुमान जी प्रभु से कहते हैं चलिये उस राजा को दंड देना है। प्रभु जाते ही देखते हैं कि इतनी कठोर धूप में नंगे शरीर वह राजा बड़े विश्वास, श्रद्धा एवं अविचल रूप से प्रभु के नाम को जोर-जोर से जप रहा है।

प्रभु का नाम ऐसा पतित पावन एवं मधुर है कि लड्डू वाली बुढ़िया के सदृश हठात खिलाने पर जब रसास्वादन मिल जायेगा तब वह उसको दंड छोड़ न सकेगा। गोस्वामी जी ने मानस में कहा है—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

जिस प्रकार से भी नाम जपा जाय वह अमृत फल देने वाला है।

प्रभु मध्यान्ह में जाते हैं अनेक वार वाण चलाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु वह उठ ही नहीं पा रहा है। मध्यान्ह का सारा समय तो यों ही खाली चला गया।

इधर श्री वशिष्ठ ने सोचा, मैंने श्री राम जी से राजा को प्राण दंड देने के लिये कहा है किन्तु इतने दयालु प्रभु उसको

फा० २

कैसे मार सकेंगे। परन्तु मेरी आज्ञापालन अवश्य करेंगे उनका हृदय द्रवित हो गया।

सायंकाल ४ बज गये। अंतिम समय था। प्रभु ने हनुमान जी से कहा हनुमान चलो अब उसको मारना ही है क्या करूँ। हनुमान जी कहते हैं चलिये।

इधर वह राजा के पास दौड़कर जाते हैं। एवं शीघ्र ही सरयू स्नान करने को कहते हैं। चंदन आदि लगा कर और भी अटूट प्रेम, एकाग्र चित्त से जोर-जोर से उस पतित पावन करुणा निधान के नाम को जपने को कहते हैं।

प्रभु अत्यन्त उदास होकर राजमहल से निकलते हैं। उसकी करुणा पुकार से प्रभु का हृदय द्रवित हो जाता है। इधर प्रभु पहुँचते हैं इधर वशिष्ठ महराज जाते हैं। वह निर्भय जाप कर रहा था। बशिष्ठ जी को दिखाने के लिए उन्होने जोर से धनुष टंकारा परन्तु वह निर्भीकता पूर्वक जप कर रहा था। गुरु वशिष्ठ जी का हृदय उसका प्रेम देखकर द्रवित हो गया। प्रभु से उन्होंने कहा—रहने दो राम! इसको प्राण रक्षा का वरदान दो। यह चाहे जैसा भी अहंकारी हो किन्तु इसका ऐसा कर्म है कि इससे यह क्षमा का पात्र है। प्रभु ती यह चाहते ही थे।

इतने में प्रभु ने हनुमान जी से एकान्त में कहा—हनुमान यह तुम्हारी बुद्धि की ही महिमा है वह डर के कारण ही नाम जाप कर रहा था। वशिष्ठ जी ने अभयदान देकर उठाया।

देखिए भगवान् की कितनी महत्ता है। यदि कुछ न करके केवल प्रभु का अपार श्रद्धा से नाम जपे तो सब कुछ हो सकता है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
सुमिरि पवन सुत पावन नामू।
अपने बस करि राखेउ रामू॥

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगत शिरोमणि भे प्रहलादू॥

मैंने इसीलिए नाम जप ही बताया कि इस साधन के द्वारा मानव अनेक भव-रोगों से पार हो सकता है। इसी एक पंथ को लेकर हम लोग अपने लक्ष्य को पूरा कर सकेंगे।

हमरा हृदय तो नाम स्मरण में सर्वदा ही रत रहता है। आज नाम जप के द्वारा ही मैं आपकी सेवा करने के लिये उपस्थित हो सकी। इसी नाम जप के द्वारा आपका हृदय शुद्ध हो जायेगा।

आप प्रेम से या अप्रेम से अग्नि में घृत डालिये वह जलेगी ही। चाहे उसका स्पर्श, क्रोध से करिये। किन्तु आपका हाथ जल जायेगा। उसी प्रकार प्रभु का नाम चाहे जिस विधि एवं स्थिति में जपिये वह लाभप्रद होगा।

एक महात्मा जी थे। वे अपने एक शिष्य से सदैव कहते थे यदि कुछ बनना चाहते हो तो जो हो सो बनो अन्य कुछ मत बनो। इस वाक्य को लेकर वह बहुत उलझा करता था कि गुरु-देव के इस वाक्य का क्या आशय है? मैं उनसे अवश्य ही अर्थ पूछूँगा।

संत महात्मा भी भक्त के हृदय की बात स्पष्ट रूप से समझ लेते हैं। सांसारिक विषयी जीव आत्मा को नहीं समझ पाते। यह उसी प्रकार से है जैसे एक साफ कागज पर लिखा हुआ शब्द दीख जाता है, एक मैले तेल लगे हुये कागज का नहीं।

श्री गुरुदेव भगवान उसके मन की बात समझ गये। महात्मा जन कर्म के द्वारा ही शिक्षा देते हैं। गुरु जी ने शिष्य से कहा आज शीघ्र भोजन बनाओ, घूमने चलेंगे। भोजन करके गुरु-शिष्य दोनों चल पड़े। सीधे रास्ते से न चल कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से आधे घंटे का रास्ता १० घंटे में घूमते-घामते गये। दो बजे एक राजा के बाग में पहुँचे। सुन्दर शीतल मंद वायु बह रही थी। तालाब में दोनों ने स्नान करके फल-फूल का आहार किया। बाग में राजा का अतिथि-गृह था। गुरुदेव तो गुरुदेव ही थे वह तो शिक्षा देने के लिये शिष्य को लाये थे। एक कमरे में गुरु-शिष्य दोनों घुस गये। एक तख्त पर गुरु ने विश्राम किया दूसरे पर शिष्य को शयन करने के लिये कह दिया। शिष्य सुन्दर बिस्तर पाते ही प्रगाढ़ निद्रा में सो गया। इतने में बाग के रखवाले ने सोचा राजा के आने का समय हो गया है अतः कमरा ठीक कर दूँ। ऐसा सोचकर वह कमरे में घुसा। देखा गेरुआ वस्त्र पहने दो महात्मा सो रहे थे। बाह्य रूप से दोनों एक ही थे, किन्तु गुरु गुरु ही थे उनमें स्थितप्रज्ञ के सभी लक्षण विद्यमान थे।

गीता में भगवान ने कहा है—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

मन में भरी सब कामनायें, पार्थ ! जब नर त्यागता।
संतुष्ट आपे में स्वयं, स्थितप्रज्ञ वह जो जागता ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

चहुँ ओर कछुआ सिकोड़े, अंग को अपने सभी।
त्यों सर्व विषयों से सिकोड़े, इन्द्रियाँ फिर भी सभी ॥

अनुवादक—ब्रह्मर्षि नारद

वे आत्मस्वरूप में लीन थे। रखवाला पहले गुरु के पास गया और उसको उठाकर पूछा तुम कौन हो ? गुरु अभ्यासी थे उन्होंने कहा राम। रखवाला समझा वह राम है। उनको छोड़ दिया। गुरु बाहर चले गये।

तत्पश्चात् वह शिष्य के पास गया और हिलाकर कहा—तुम कौन हो ? वह ब्राह्मण का लड़का था, गुरु के साथ रहते हुये भी वह इतना अधिक समझ नहीं पाया था। उसने कहा, ब्रह्मर्षि। रखवाले ने उसे मारकर बाहर निकाल दिया। बेचारा शिष्य रोता हुआ आश्रम में पहुँचा और गुरु से सब बातें बतलाई। गुरुदेव ने कहा, तुम अवश्य कुछ बने होगे। बनना ही था तो जो थे वही बनते। मुझको भी उसने धक्का दिया था, किन्तु मैंने राम बताया। उसने छोड़ दिया। यदि बनते हो तो जो सत्य हो सो बनो।

बुरे हो न भले हो, मिले हो न जुदे हो।
बँधे हो न खुले हो, केवले केवले।

तुम्हारा जो स्वरूप है उसी में स्थित रहो। सत्यस्वरूप, आत्मस्वरूप, बनोगे तो कुछ न बिगड़ेगा।

बालक अपने मित्र के साथ उसके बाग में गया। उसने आम के पेड़ों को दिखाते हुये कहा, यह गुलाब का पेड़ है, यह केवड़ा है आदि आदि। मित्र ने कहा, यह आम का पेड़ है। आप गुलाब, केवड़ा, चम्पा आदि बताते हैं। मित्र ने कहा, इसकी कलम को जिस चीज में गाड़कर रखा जाय उसमें उसी की बू आती है। इसी प्रकार आप लोग आत्मज्ञानी संतजन के सत्संग

में लगे रहेंगे तो अवश्य ही आप में उनकी बू आयेगी। अतः आत्म-ज्ञान को जानना परम आवश्यक है। कहा है—

कृषि सुखानी खेत मे वर्षा हुआ तो क्या हुआ।
का वर्षा जब कृपी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।

जीवन का अनमोल समय यों ही अनेक दुख उठाते अज्ञानावस्था में बीत जायेगा। मेरे प्रभु के परम पवित्र प्यारे नाम के द्वारा इस स्वरूप को प्राप्त करिये।

श्री गुरुदेव भगवान की जय।

श्री गुरुवे नमः

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे हरे।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव त्वमेव सर्व मम देव देवः॥

हर कक्षा में नाम महिमा एवं आत्मज्ञान के बारे में चिन्तन चल रहा है। आप लोगों को स्मरण होगा कि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय कक्षा में यही चला आ रहा है कि किस प्रकार अपने स्वरूप को पहचाना जाय एवं नाम क्या है? उसकी महिमा क्या है? यही सुनते चले आ रहे हैं। अभी अध्यात्म केन्द्र की कक्षा प्रारंभ नहीं हुई है बाद में जब प्रारंभ होगी तब जायेंगे। वह इसी प्रकार की बात है जैसे कोई बीज बिना उसके गुण को जाने एवं बोने का

तरीका न जाने खरीदा जाय। यदि बिना समझे उसको लेकर प दें तो उसका लाभ न होगा।

प्रत्येक वस्तु का सर्वप्रथम ज्ञान होना चाहिये। बिना उसको जाने उसकी कोई उपयोगिता नहीं। जैसे, यदि हम आपको कहें आत्मज्ञान के समावेश के लिये दो सौ माला जपिये, किन्तु आप बिना जाने क्या समझेंगी? इसी प्रकार से आत्मज्ञान के लिए वह क्या वस्तु है इसकी भूमिका समझनी चाहिये।

एक पिता और पुत्र थे। पिता अपने पुत्र से नित्य कहता था मुझे केला खाने की प्रबल इच्छा है तुम ला दो, किन्तु वह नहीं लाता था। एक दिन पिता सख्त बीमार हो गया तब पुत्र केला लेकर आया। पिता का अन्त हो चुका था। पिता का मुख खोल कर उसे केला खिलाना चाहा। जब पिता ने नहीं खाया तो वह रोने लगा।

अब पछताये क्या होताहै।
जब चिड़िया चुग गई खेत॥

बहुत सी माताए कहती हैं हम वृद्धावस्था में आत्मज्ञान सीखकर क्या करेंगी। यह उनकी महान भूल है। अभी तो जीवन बहुत है। मरतेदम तक अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए स्वयं भी प्रयत्न करना चाहिये एवं दूसरों को भी शिक्षा देनी चाहिये कि वे भी इसे जानकर लाभान्वित हों। यह भी परोपकार ही है।

धनोपार्जन करके सुख सम्पत्तिवान होकर भी ब्रह्मोपासना करना परमकर्त्तव्य है। जब ब्रह्म होकर भी ब्रह्मोपासना करनी पड़ती है, फिर आप लोगों की तो कोई बात ही नहीं है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।
सुमिरि पवन सुत पावन नामू ।
अपने बस करि राखे रामू ।।

नाम के साथ-साथ नामी को जपना परमावश्यक है। जिसके नाम को जपते हैं उस नामी को परम प्रेम और श्रद्धा से अपने वश कर सकते हैं।

एक राजा बड़ा ही शौकीन, ऐश्वर्यवान एवं कलाविज्ञ था। एक दिन उसने नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि कोई कारीगर कारीगरी कर के दिखाये। यदि वह मुझे पसन्द आ जायेगी तो मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा।

अचानक साहस करके दो नवीन कारीगर आये। उन्होंने कहा, एक बड़ा हाल हमारी कारीगरी का प्रदर्शन करने के लिये बनवा दीजिये। राजा ने तत्काल हाल तैयार करवा दिया।

एक कारीगर कारीगरी में प्रवीण था और दूसरा, कारीगरी में अनजान, किन्तु बुद्धि में अति कुशाग्र था। प्रथम ने अपनी कारीगरी प्रारम्भ कर दी। दूसरे ने केवल दीवार पर पर्दा डाल, कर उसे घिसना प्रारम्भ कर दिया। जो लोग आते उसकी कला देखकर आश्चर्य करते। वे हंसते कि तुम क्या कर रहे हो, किन्तु वह कुछ भी उत्तर नहीं देता था।

महीना समाप्त होते ही एक दिन राजा का प्रवेश हुआ। प्रथम कारीगर की कारीगरी एवं कला-कौशल को देखकर राजा अवाक् रह गया। दूसरों ने भी उसकी कारीगरी की प्रशंसा की। अब वह अपनी कारीगरी पर अत्यधिक प्रसन्न था। दूसरे अपने साथी की मूर्खता पर भी वह प्रसन्न था, क्योंकि वह

जानता था कि उसने कुछ भी नहीं बनाया अतः वह दंड का भागी बनेगा। राजा ने दूसरे कारीगर को बुलाया और पूछा— तुमने कुछ क्यों नहीं बनाया ? उसने कहा, सरकार यह कौन कहता है ? मैंने उससे भी अधिक सुन्दर बनाया है ऐसा कहते हो उसने पर्दा खोल दिया।

उस चमकती दीवार में प्रथम कारीगर का चित्र ज्यों का त्यों और भी अधिक सफाई से उत्तर आया था। राजा उसकी कारीगरी पर आश्चर्य-चकित रह गये। ऐसी सुन्दर कारीगरी उसने कभी न देखी थी। राजा ने उसे मुँह माँगा इनाम दिया।

इसी प्रकार हृदयरूपी दीवार पर राम नाम रूपी कला से घिसकर शुद्ध शीशावत् बना लीजिये जिससे मेरा प्रभु उस नाम के आधार से मुझमें ही दृष्टिगोचर होने लगे।

आप जरा विचार करिए, आप अपने परिवार के १० प्राणियों को अपनी इच्छा पर, एक सूत्र पर, एक विचार पर, नहीं चला सकते हैं, जब कि वे आप के हैं, किन्तु आप किसी आश्रम में जाकर देखिये एक महापुरुष की शक्ति से दस परिवार के लोग दस प्रकृति के, एक केन्द्र पर, एक सूत्र में बँध कर चलते हैं।

आप जरा विचार करके देखिये, जहाँ एक बाँप के चार पुत्रों का विवाह हो जाता है चार पुत्र अपने-अपने परिवार को लेकर एक साथ नहीं रह सकते। झंझट-झगड़े के कारण वे अलग हो जाते हैं। किन्तु एक महान् पुरुष १० परिवार को जोड़ कर अपनी एक इच्छा पर नचाता है। सर्वप्रथम यह ध्यान देने की बात है कि राम नाम के आधार से हममें वह शक्ति, वह बल आ जाता है जिससे हम विश्व को आत्मबल के आधार पर एक सूत्र मे बाँध सकते हैं। प्रभु को केवल शुद्ध हृदय से जपने व स्मरण करने की आवश्यकता है।

एक दुखिया अनाथ, गरीब लड़की थी। नित्य वह ईश्वर को पुकारा करती थी कि प्रभु मेरी विपत्ति को शीघ्र दूर करो। एक व्यक्ति ने उसके दुख से द्रवित होकर एक राजा के यहाँ बर्तन माँजने की नौकरी लगा दी थी। वह हरि-भक्त काम करते-करते हृदय से प्रभु को पुकारा करती थी। एक दिन की बात है बालिका एकान्त होने के कारण बर्तन माँजते हुए "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरार। हे नाथ नारायण वासुदेवी।" अपने प्रेम भरे मधुर हृदय से गाती जाती थी। अचानक रानी ने उस मृदु स्वर को सुनी। उसका हृदय उस स्वर लहरी की ओर आकर्षित होने लगा। आपने त्रिवेणी में देखा होगा कि हरे राम की आवाज सुनते ही देहाती मातायें झुण्ड की झुण्ड आकर खड़ी हो जाती हैं। यद्यपि वे कुछ नहीं समझतीं फिर भी आकर खड़ी हो जाती हैं। इसका मतलब यह है कि हृदय का मामला सबका एक ही है। चुम्बक पत्थर चाहे जैसा भी लोहा हो अपनी तरफ खींच लेता है। आत्मा से आत्मा का सम्बन्ध है। शुद्ध आत्मा अपनी दूसरी आत्मा को यों ही आकर्षित कर लेती है।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

कहने का आशय यह है कि यद्यपि अजगर कुछ भी काम नहीं करता, वरन् अपनी साँस से ही सब वस्तुओं को अपनी ओर खींच लेता है। कोई चाहे या न चाहे, किन्तु उसके समीप जाते ही वह उसके मुँह में चला जाता है। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा को कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ता। जैसे अजगर के

मुँह में सब वस्तुएँ स्वयं चली जाती हैं वैसे ही आत्मज्ञानी की ओर यों ही सब लोग आकर्षित हो जाते हैं।

रानी ने दासी के मधुर स्वर को ध्यान से सुना। उससे नहीं रहा गया। उसने दासी को बुलाया। पहले तो दासी घबराई, अब यह मेरा क्या करेगी। किन्तु तत्काल उसके हृदय में आत्मा का संचार हुआ। उसने सोचा यह तो मेरी आत्मा है, यह मेरा क्या करेगी। अवश्य ही मेरा अच्छा संस्कार आया है। वह प्रसन्नता से रानी के पास गई। रानी ने पूछा, यह तुम क्या गा रहीं थीं? कृष्ण गोविन्द कौन हैं? उसमें कितना आकर्षण है? तुम इसका भेद बताओ। दासी ने कहा, आप इसको जानकर क्या करेंगी? किन्तु रानी न मानी। दासी संक्षिप्त परिचय देकर अपने कार्य में लग गयी। बर्तन माँज कर वह पुनः गाने लगी। अब रानी का हृदय उस मधुर पावन नाम से एक दम द्रवित हो गया। उसने पुनः दासी को बुलाया और वस्त्र आदि देकर अपने पास बैठाया। पूछा, यह कौन हैं? इसको कैसे प्राप्त किया जा सकता है? दासी ने कहा, यह प्रभु का पावन नाम है। उससे हृदय शुद्ध हो जाता है। यों तो प्रभु चराचर में व्याप्त हैं, वैसे अपने में ही प्राप्त होते हैं।

रानी उस दिन से दासी को अपने पास रखने लगी और स्वयं भी नाम जपती और दासी से भी सुनती रहती थी। अब वह दिन भर नाम जप करती रहती। उसका हृदय एक मिनिट भी उससे अलग न होना चाहता था। उसके व्यर्थ के सभी कार्य, जिससे कोई लाभ नहीं होता था, स्वतः ही छूट गये।

दासी अब गुरु रूप हो गई। वह महल की छोटी रानी की तरह हो गई। रानी दिन भर उस दासी के ही सत्संग में रहने लगी और गुरु रूप में उसको मानने लगी।

अब राज्य में विरोध की आग भड़कने लगी। सर्वप्रथम मंत्री ही कुढ़ने लगा कि रानी को क्या हो गया है। एक दासी के वशीभूत होकर पागल हो गई है जब देखो तब माला लिये बैठी रहती है।

मंत्री ने सोचा राजा से शिकायत करूँगा। अब रानी राज-काज में कुछ भी रुचि नहीं लेती। हमारी इच्छा पर ही सब छोड़ देती है। रामायण, गीता आदि पुस्तकें पढ़ती रहती है।

राजा कहीं बाहर गये थे। मन्त्री ने पत्रवाहक द्वारा कई बार सूचना दी, किन्तु राजा का कोई उत्तर नहीं आया। फिर मन्त्री ने स्वयं राजकुमार को सब बातें सिखाकर राजा के पास भेजा।

राजकुमार पिता के पास गया और सब बातें कह सुनाई। किन्तु पिता ने कुछ भी नहीं सुना। गुस्से में सब बातें सुनकर उसे ढकेल दिया। वह गिर पड़ा। राजकुमार ने सोचा मैंने तो अच्छी बात बताई, परन्तु पिता ने मुझे ही धक्का दे दिया। ऐसा सोचकर वह राज्य के बाहर चला गया। उसे रास्ते में एक सन्यासी मिल गये। उन्होंने उसकी चिन्ता का कारण पूछा। उसकी वेदना सुनकर, संसार का यथार्थ ज्ञान कराकर, उसे सन्यासी बना दिया।

रानी की दशा विचित्र होती जा रही थी। दासी को वह एक मिनट छोड़ नहीं सकती थी। दासी में वह ईश्वर का आभास पाने लगी। आत्म-दर्शन कर लेना ही वेद को जानना है। यह बात बिलकुल सत्य है कि एक ही आत्मा रूपी सूत्र में अनेक मणि रूपी शरीर गुथे हुये हैं। अब रानी संसार को बिल्कुल भूल गई। राजा भी लौटकर वापस आ गये और रानी की समस्त बातों को उन्होंने सुना।

रानी आत्मा में लीन हो चुकी थी। उसने राजा की बात पर कोई ध्यान न दिया। राजा ने ज्योंही रनिवास में प्रवेश किया वहाँ के वातावरण को देखकर स्तम्भित हो गये। देखा सब माला जप रहें हैं। धूप की सुगन्ध आ रही है, रानी सादे वस्त्र में है और दासी सिंहासनारूढ़ है। यह देखते ही वह आग बबूला हो उठा और लौटकर चला गया। उसने अपने सच्चे सेवकों को बुलाया और कहा कल बरामदे में सब पूजा की तैयारी करना और रानी को पूजा के लिये बुलाना। जब वह पूजा करने लगेगी शेर को छोड़ देना। वह रानी एवं दासी का भले ही ध्वंस कर दे। जितनी सतोगुण में ताकत होती है उतनी ही आसुरी गुण में भी होती है। आसुरी गुण की शक्ति क्षणिक है। सत्य सत्य ही रहता है।

आपको आत्मशक्ति की एक सत्य चर्चा सुनाते हैं। कुछ वर्षों पूर्व की बात है एक अंग्रेज त्रिवेणी से शिकार खेलने के लिए नाव पर चढ़ा। ज्योंही वह नाव पर चढ़ा उसने एक मगर को पानी में देखा। वह उसका शिकार करने के लिए उसके पीछे चला। लाक्षागृह के पहले एक महात्मा जी की कुटी थी। वह परम आत्मज्ञानी थे। मगर का पीछा करते करते वह अंग्रेज उन महाराज की कुटिया के समीप पहुँच गया। महाराज ध्यान-मग्न थे। अचानक वह उठे। सेवकों से कहा देखो आसपास गंगा के किनारे कौन हिंसा कर रहा है। उसको मना करो। सब जीवात्मा एक ही हैं। अहिंसा करना महान पाप है। वह उसको न मारे शिष्यों के कहने पर अंग्रेज गिटपिटाया और अपने अहंकार में कहा मैं तो मारूँगा तुम मना करने वाले कौन हो?

महात्मा जी ने उस अंग्रेज को बुलाया और उसे आत्मज्ञान

की शिक्षा दी ; उस अंग्रेज ने पिस्तौल महाराजी के चरणों में रख दी, और उनका अनन्य शिष्य बन गया।

राजा को आत्मज्ञान का जरा भी ज्ञान होता तो वह स्त्री के साथ ऐसा अत्याचार न करता।

दूसरे दिन पूजा की समस्त तैयारी कर दी गई। रानी को बुलाया गया कि राजा उनकी पूजा का दर्शन करना चाहते हैं। दासी गुरु को सब बातों का ज्ञान था। वह अपने आत्मबल से इस गुप्त रहस्य को जान चुकी थी। वह कमरे में बैठकर उस लीला का अवलोकन कर रही थी। रानी जैसे ही पूजा करने लगी वैसे ही राजा ने सिंह को छोड़ने का इशारा किया। सिंह दौड़ कर रानी के सम्मुख आया और थोड़ी दूर पर शांत होकर ठिठक गया। रानी आत्म-स्वरूप में लीन थी। ज्योंही सिंह रूपी भगवान को देखा वह परम प्रसन्न हुई। 'त्वमेव माता............" की स्तुति कर उसकी पूजा-अर्चना की और कहा आज आपकी महान् कृपा हुई जो मेरी पूजा को स्वीकार कर लिया। सिंह शान्त होकर बैठा रहा। राजा एवं मंत्री दोनों ही इस दृश्य को देखकर अवाक् हो गये। अब दोनों ने रानी के चरणों में सिर झुकाया और क्षमा-याचना की। इतने में गुरु माँ भी अपने शिष्य की इस सफलता पर परम प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने आई। राजा को रानी के चरणों से उठाकर आत्मज्ञान दिया और कहा मनुष्य को आत्मज्ञानी होना परम आवश्यक है। यदि हम अपने स्वरूप को जान लेंगे तो रानी की तरह, रोग, शोक, दुख रूपी शेर से सदैव निर्भय रहेंगे।

आत्मज्ञान केवल बोलने से ही नहीं होता है वरन् कार्य रूप में परिणत करने से होता है। आप लोगों ने रचनात्मक रूप से अनेक महापुरुषों से सुना होगा। मैं उनके सामने कौन सी वस्तु हूँ फिर भी मैं कहना चाहती हूँ कि हर एक वस्तु का

कार्य रूप में परिणत करने के लिए उसकी उपयोगिता का ढंग जानना चाहिए। गंगाजी में स्नान करने और गंगा जल पान करने से हमारे लिए परम लाभप्रद होगा किन्तु यदि हम भरी गंगा जी में डुबकी लगाकर बैठ जायें तो हम मर जायेंगे। सद्गुरु के द्वारा अपनी शक्ति को यथार्थ रूप से जानकर उसका प्रयोग करना चाहिए। विटामिन यदि मात्रानुसार खायेंगे तो लाभप्रद होगा और बेमात्रा से हानि होगी।

स्वयं हमको प्रत्येक वस्तु को जानना चाहिए। जैसे, आपके पास मोटर है और मोटर चलाना स्वयं नहीं जानते तो दूसरे का मुँह देखना पड़ेगा और समय पर वह उपयोग में नहीं आ सकेगी। किन्तु यदि स्वयं चलाने का ढंग जानते हैं तो वह अवश्य उपयोग में आ सकेगी।

आपको अपनी स्वयं की शक्ति जाननी चाहिए। अपनी अज्ञानता के कारण आपको, आपके परिवार को व अन्य सबको कितना कष्ट उठाना पड़ता है। अपनी शक्ति को जानने पर कितना सुख होगा, आप स्वयं इसका अनुभव करेंगी।

जब मैं देखूँगी कि आप लोगों ने इस ज्ञान से लाभ उठाया है तो उसी गुरु माँ की तरह मुझे भी कितनी प्रसन्नता होगी। श्रवण करने के बाद मनन करना चाहिए। चाहे पड़ोसी से या अन्य किसी से चर्चा करो किन्तु करो अवश्य। जब आपको निधिध्यासन हो जायेगा तो साक्षात्कार हो जायेगा। श्रवण, मनन और निधिध्यासन करने से ही साक्षात्कार हो सकेगा। जब आप ऐसा करेंगी तभी आपको ज्ञान होगा नहीं तो मुझको ही दोष लगायेंगी कि कहाँ आत्मज्ञान हुआ। मेरे कहे पर पहले चलकर तो देखिए यदि कोई नहीं मिलता जिससे आप कहें तो बच्चे से ही कहकर मनन करिए और नाम जप करिये।

श्री गुरुदेव भगवान की जय

श्री गुरवे नमः

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

एक ही कपड़े - बार-बार साबुन लगागर धोने का आशय यह है कि वह अच्छी प्रकार से साफ हो जाय। इसी प्रकार उसी आत्मज्ञान के विषय में बार-बार कहने का यही आशय है कि वह पूर्ण रूप से आपके हृदय में जम जाय।

यदि बालू में से तेल निकाला जाय तो कभी भी तेल नहीं निकल सकता। किन्तु यह कोई कहे कि रेत में से तेल निकाला गया, कछुए की पीठ पर घास जमी, तो हम एक बार सत्य मान लेंगे, किन्तु बिना आत्मज्ञान के सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

यदि अभिमान के कारण धर्म एवं संत-महात्मा का तिरस्कार किया जाय तो ऐसे अहंकारी वैभव से क्या लाभ? जिस प्रकार कहा जाता है कि उत्पन्न होने के पूर्व से ही अन्न-वस्त्र आवश्यक है उसी प्रकार सच्चे सुख के लिये आत्मज्ञान की आवश्यकता है।

चार अन्धे व्यक्ति घूमने जा रहे थे। वहाँ कहीं एक व्यक्ति आ गया। उसने उन लोगों से पूछा, क्या तुम जानते हो ईश्वर किस रूप का है? उन लोगों ने हाथी को पकड़ रखा था, अतः जिसने जिस अंग को पकड़ा उसने उसी रूप को बताया। वास्तव में

वास्तव में सभी अंधे थे। इसी प्रकार इस संसार की गति है। बिना जाने समझे सभी अपना ही राग अलापते हैं।

बुद्धि दो प्रकार की होती है—(१) तीव्र बुद्धि (२) मोटी बुद्धि। किन्तु हरि नाम एक ऐसा पैना चाकू है जो रद्दी से रद्दी कलम एवं पेन्सिल को चोखी बना देती है। इसी प्रकार हरि नाम मोटी-से-मोटी बुद्धि को तीखी बना देती है।

राजपुत्र एवं मन्त्रीपुत्र की कहानी

एक राजकुमार एवं मन्त्री कुमार में घनिष्ट मित्रता थी। राजकुमार सीधा, सरल कुछ बुद्ध था। मन्त्री कुमार अति कुशाग्र बुद्धि था। जब राजकुमार के गौने का समय आया। मन्त्री पुत्र कुमार के संग कर दिया गया। मार्ग में सिंह मिला। मन्त्री पुत्र अपनी बुद्धि की कुशाग्रता से एक कुएँ में उसको दूसरे सिंह का भय दिखाकर उसी में गिरा कर मार डाला। मार्ग की अन्य कठिन समस्याओं एवं बाधाओं को दूर करता हुआ राजकुमार के ससुराल पहुँचा। राजकुमार सरल था और नवविवाहित राजकन्या दुःचरित्र थी। रात्रि को वह कपड़े में लपेटी हुई तलवार लेकर राजकुमार के शयन गृह में गई और उसका बध कर दिया। वहाँ से लौटकर अपने शयन गृह में चली गई। मन्त्री पुत्र सोया नहीं था। राजकुमारी को उसने आते-जाते देखा था। प्रातः राजकुमारी पुनः नवविवाहित पति के कमरे में गई और जोर से क्रन्दन करने लगी। मन्त्री पुत्र दुःचरित्रा के ढोंग को समझ गया एवं राजकुमार की लाश लेकर चला गया। उसने उसको एक सुरक्षित स्थान रख दिया। स्वयं

आप लोगों को नाम लिखवाने में क्यों भय लगता है? मुझे क्या करना है, मैं आपके नाम की रजिस्ट्री लेकर स्वर्ग थोड़े जाऊँगी। नाम तो केवल आपकी सुविधा के लिए लिखा जाता है। नाम तो थोड़ी सी संसारी विद्या के लिए लिखवाया जाता है फिर यह तो अनमोल विद्या है।

श्री गुरुदेव भगवान की जय।

श्री गुरवे नमः

सिद्ध आसन से बैठकर गुरु का ध्यान करते हुए "त्वमेव माता......" की स्तुति करिये—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव त्वमेव सर्वम् मम देव देवः॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे हरे।

एक माई ने मुझसे दो चार दिन पहले पूछा था—यदु का क्या अर्थ है? यदु के तो अनेक अर्थ लगते हैं इसका क्या आशय है? मैंने कहा—अंग्रेजी में एक शब्द कई स्थान पर कई तरह से प्रयोग होता है। इसी प्रकार कर्म दो प्रकार के होते हैं। यह वर्तमान कर्म का उल्लेख कर रहें हैं। जैसे भूख लगी, रोटी बनाई, फिर खाया। या पान खाने की इच्छा हुई तो पान मँगाना पड़ेगा फिर लगाना पड़ेगा तब खा सकेंगे। यदि खाना नहीं बनायेंगे या खाने का कर्म नहीं करेंगे तो खा नहीं सकेंगे।

यही कर्म करना है। जितने भी कार्य हैं जैसे, पास होना, जमीन बोकर अनाज उत्पन्न करना आदि सबमें कर्म प्रधान है। बिना कर्म के किसी भी फल की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जितना ही अच्छा कर्म करेंगे उतने ही अच्छे फल की प्राप्ति होगी।

यदि हम पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो पूर्व जीवन के भरे हुए रिकार्ड से ही जीवन व्यतीत करेंगे। किन्तु यदि नवीन-नवीन प्रबल पुरुषार्थ करते जाएगे तो हमारा प्राचीन जीवन में जो कर्म बना है वह भी संचित रहेगा और नये-नये कर्म बराबर बढ़ती रहेंगे।

जितने भी महान् पुरुष हुए हैं चाहें राजनैतिक चाहे धार्मिक उन्हें पुरुषार्थ अवश्य ही करना पड़ा है। पं० नेहरू का ही उदाहरण लीजिये। वह ऐसे ही प्रधान मंत्री नहीं बन गये, उन्हें सत्य, त्याग, अहिंसा का पुरुषार्थ लेकर संसार में चलना पड़ा। महात्मा गांधी ने कितना बड़ा त्याग किया—चाहें जिस रूप से, चाहे जिस लिये किया, किन्तु कर्म अवश्य करना पड़ा।

अध्यात्म जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये कर्म एवं ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं। दोनों ही चिड़िया के दो डैने के सदृश हैं।

छोटे से छोटे, मामूली से मामूली कार्य को सम्पान करने के लिये हाथ पैर हिलाना ही पड़ता है। फिर इतने बड़े आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये भला कर्म नहीं करना पड़ेगा।

अभी इतना ही जारी रखिये कि प्रत्येक सप्ताह आप लोग आती ही रहिए। यही कर्म सतत् करते रहने से, इसे सुनने से, कुछ न कुछ कार्य रूप में आ ही जायेगा।

दो०—करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान॥

जैसी भी जिस प्रकार से भी किसी संगत करिये। करने से उसका असर अवश्य ही पड़ता है। रोग रहने से उसका असर पड़ता ही है।

आपने बहुतों को देखा होगा कि समाज के संसर्ग से लोग कितनी अच्छी अंग्रेजी बोलने लगते हैं, यद्यपि उन्हें लिखना-पढ़ना बिल्कुल नहीं आता।

पहाड़ी प्रदेशों में मैंने देखा है लोग झरने से जल निकालते हैं। झरने से पानी भर कर लर लाया जाता है। पानी वाले ला-ला कर जिस भूमि पर घड़ा रखते हैं बहुत दिन के पश्चात् उसमें गोल कटोरे जैसा गड्ढा बन जाता है जिसमें अच्छी तरह लोग घड़ा रख सकते हैं।

बिना कर्म किये तो कोई कार्य हो ही नहीं सकता? हमारा संकल्प यदि सत्य हो तो विश्व में कोई वस्तु असम्भव नहीं।

अंगुलिमाल डाकू की कहानी

एक बहुत बड़ा डाकू था। उससे प्रान्त के सभी लोग थर-थर काँपते थे। उसने निन्यान्वे मनुष्यों की हत्या की थी। सौ मनुष्यों को मारकर माला बनाने का निश्चय किया था। अब उसके संकल्प में एक ही मुण्ड की कसर बाकी थी। जब महात्मा बुद्ध ने उसका नाम सुना तो निश्चय किया कि उसका उद्धार करना चाहिये। लोगों से अंगुलिमाल डाकू का पता पूछा। वे उसी जंगल की ओर चल पड़े जहाँ अंगुलिमाल डाकू रहता था।

लोगों ने उन्हें मना किया महात्मा जी आप इस रास्ते से न चलें नहीं तो आपके प्राण न बचेंगे।

महात्मा जी ने किसी की भी न सुनी। वे चुपचाप आगे बढ़ने लगे। अंगुलिमाल डाकू राह में अपनी माता को ही मारने की कोशिश कर रहा था। सोच रहा था अब इसके सर से ही १०० मुण्ड की माला पूरी कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। माँ बेचारी बुढ़िया थी, चिल्लाई। अचानक महात्मा जी को देखकर अंगुलिमाल का ध्यान उनकी ओर गया और माँ को छोड़ दिया। बेचारी बुढ़िया जान बचाकर भागी। जान बची लाखों पाये। अब अंगुलिमाल महात्मा जी को ललकार कर कहने लगा— 'तुम कहाँ जाते हो? मेरे हाथ से अब तुम्हारे प्राण बचने न पावेंगे।'

महात्मा ने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा, अंगुलिमाल मैं तो खड़ा ही हूँ परन्तु तुम्हें भ्रम हो रहा है। अंगुलिमाल का हाथ उठता ही न था। उसकी सारी शक्ति शिथिल हो गई। वह शस्त्र चला ही न पाया। बार-बार महात्मा को ललकारता है। महात्मा जी बार-बार कहते हैं तुम भूल कर रहे हो मैं खड़ा हूं। एक कृपा दृष्टि महात्मा जी ने अंगुलिमाल पर फेर दी बस अंगुलिमाल का हृदय एकदम पलट गया और वह अपनी हार मान कर महात्मा जी के चरणों में गिर पड़ा। पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। महात्मा जी के चरण पकड़ कर उसने कहा कि प्रभो। पाप से मेरा उद्धार करिये। मैं बहुत अधिक पापी नीच हूँ। महात्मा जी ने कहा कि क्या तू साधु बनेगा। अंगुलिमाल ने कहा हाँ, भगवन् बस महात्मा जी उसको अपने आश्रम ले आये और उसको ज्ञान दीक्षा देकर साधु बना दिया। भिक्षा के लिये अब नित्यप्रति अंगुलिमाल शहर में जाता था। वहाँ लोग इसे

देख कर डर जाते। कुछ ईंट-पत्थर मार कर उसको लोहू लुहान कर देते। कुछ गाली देते किन्तु वह कुछ न बोलता। चुपचाप सब सहता। भिक्षा लेकर चला आता। एक दिन अंगुलिमाल शहर में भिक्षा माँगने गया। वहाँ एक स्त्री को बहुत रोते देखा। अंगुलिमाल ने आकर गुरुदेव से कहा भगवान्? उसका दुख दूर कैसे होगा? महात्मा जी ने कहा कि देखो वहाँ जाकर तुम, उस स्त्री से कहना—'यदि मैंने जीवन भर हिंसा न की हो तो तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जाय' अंगुलिमाल डाकू को इस बात पर विश्वास न होता। वह सोचता था कि मैंने तो एक नहीं निन्यान्वे व्यक्तियों की हिंसा की है फिर कैसे कहूं? परन्तु लगातार तीन दिन इसी प्रकार गुरुदेव के उत्तर देने पर उसे पक्का विश्वास हो गया। अपने स्वरूप को जान गया। ज्ञान होने पर सारे पाप जल कर भस्म हो जाते हैं। अब गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास हो गया और ऐसा कहते ही उस स्त्री का सारा दुःख दूर हो गया। फिर उसने भी दीक्षा ली—साधु बन गयी। इस प्रकार सत्गुरु की कृपा से महान् पापी भी परम पवित्र कल्याण स्वरूप बन जाता है जैसे अंगुलिमाल हो गया।

मामा न होने से काना मामा ही भला है। जानना तो वही है जो कर्म में लाया जाय। जो न लाया जा सके तो बोलना भी कुछ ठीक ही है। शायद उस कर्म में से दूसरों का उपकार हो सके।

श्री गुरुदेव भगवान की जय

श्री गुरुवे नमः

इसके पूर्व गुरु पूर्णिमा महोत्सव हो रहा था इसलिये कक्षा न हो सकीं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देवः॥

एक हाथ से ताली बजती है या दोनों हाथों से बताइये यह निश्चय है या नहीं?

साधक—दीवाल में पीटने से एक हाथ से भी ताली बज सकती है।

गुरुदेव—हम ताली कह रहे हैं आवाज नहीं। नर-नारी का रूप धरे, शृङ्गार करके दूसरी बात है। नारी-नारी दूसरी बात है। काशीराज शंख चक्र लगाकर वासुदेव नाम धराये। दूसरी बात है। वासुदेव जी वासुदेव थे दूसरी बात है। इस बात को एक किनारे रख दो।

एक अन्धा लालटेन लेकर रास्ते में चला जा रहा था। किसी पथिक ने पूछा—सूरदास जी, आप तो देख नहीं सकते, फिर लालटेन का प्रकाश लेकर क्यों चलते हैं? सूरदास ने कहा—भैय्या, मैं नहीं देख सकता तो क्या हुआ? लालटेन के प्रकाश से दूसरे तो लाभ उठा ही सकते हैं। इसके अतिरिक्त मेरी भी रक्षा हो जाती है—दूसरे लोग मेरे प्रकाश से मुझे तो धक्का नहीं देंगे।

इसी प्रकार हम हैं चाहें हम बताये हुए ज्ञान पर चल सकें अथवा नहीं, किन्तु मेरे ज्ञान के प्रकाश से लाभ उठा सकेंगे।

एक एम० ए० पास विद्यार्थी है। उसे छोटे बच्चों को शिक्षा देनी है। वह छोटी पुस्तकों का अध्ययन करता है और उन्हें पढ़ाता है। इसका आशय यह नहीं है कि वह जिस क्लास का विद्यार्थी है उसी क्लास को पढ़ाये। इसी प्रकार सिद्ध अवस्था में पहुँचे महात्मा भी साधक के निमित्त अपने स्थान से नीचे उतर कर कर्म कराने के लिये आते हैं।

बिना कर्म किये कोई भी शुभ या अशुभ फल नहीं मिलता। एक हाथ से ताली नहीं बज सकती। जब आप कर्म करेंगी तभी आपको फल मिलेगा। बड़े-बड़े महात्मा, जिनको आप निस्पृह, त्यागी, संसार से परे समझ रहे हैं उनको भी कर्म करना पड़ता है। ऐसे संतजन भी आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये कर्म करते हैं। कोई तुच्छ संसारी वस्तु के लिये तो कर्म करना ही पड़ता है फिर निज स्वरूप—आत्म-स्वरूप—भला बिना कर्म किये कैसे प्राप्त हो सकता है? रेत से तेल चाहे प्राप्त हो जाय किन्तु बिना कर्म किये फल कदापि नहीं मिल सकता।

अनेक संसारी जीव अनेक अभिलाषाएँ लेकर प्रभु के दरबार, सन्तों के पास, जाते हैं और इच्छा पूर्ण करके आते हैं। चाहे जिस प्रकार का अर्थ हो ईश्वर-प्राप्ति के लिये भी कर्म करना आवश्यक है। कोई चाहे किसी संत के पास जायें और कर्म न करना पड़े हो सकता है कि महात्मा के आशीर्वाद से फलीभूत हो जाय किन्तु पाप का फल भोगना पड़ेगा। इसी प्रकार पुण्य कर्म करता जाये और कितना ही आशीर्वाद न पाया हो किन्तु पुण्य का फल मिलेगा ही।

ऐसा न कहो कि कोई भी क्रियाहीन है। भले ही हम गुफा

में जाकर बैठ जाएँ, कोई सामाने अपने पास न रखें कुछ भी कामना हृदय में न रक्खें, किन्तु उसगु फा में बैठना, आँखों की पलकों को झपकाना, ईश्वर का ध्यान करना भी कर्म करना है।

निष्क्रिय किसे कहते हैं ? श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि कौन कर्म करते हुये भी अकर्मी है और कौन कर्म न करते हुये भी कर्मी है।

मेरा कहना है कि आप लोग कर्म करना न छोड़ें पाप कर्म भी कई प्रकार के होते हैं। मोटे-मोटे पाप गौ-हत्या, आत्महत्या चोरी, व्भिचार करना आदि मोटे पाप है। किन्तु ज्ञान में लोभ करना, क्रोध करना, मोह करना आदि सूक्ष्म पाप है यह ऐसे पाप है जो हम समझ नहीं पाते। आसुरी प्रकृति ही पाप है। यदि स्वयं अच्छे नहीं बन सकते, तो दूसरों को ही सद्‌शिक्षा दे। शायद वह अच्छा बन सकें। न मालूम हम लोग कितने दिन का जीवन लेकर आये हैं अतः पहले से ही शुभ कर्म करके क्यों न रहे ? जितना हमें दुःख, क्लेश, चिन्ता होती है यह सब पाप के फल है। अतः यह मानव चोला पाकर हम क्यों पाप करें दुनिया में कौन-सा ऐसा पापी है जो स्वर्ग नहीं जा सकता ! गुरुदेव कहते हैं सब जो सकते हैं--केवल एक आलसी नहीं जा सकता।

हम यंत्र हैं यह यन्त्री हैं ? अर्थात् हम औजार हैं या मिस्त्री यदि आपको उत्तर नहीं आता तो जरा विचार करो अपने आपको सोचो, तो फिर उत्तर आ जायगा। हम किसी और से नहीं पूछेंगे। अपनी गलती यदि अपने आप देखकर सुधार करे तो

बहुत शीघ्र त्रुटियाँ हट जायेंगी और एक दिन इस प्रकार आप कंचन हो जायेंगे।

(२) हमारे में मिठास है या अन्य में—

जैसे मिश्री मिठास है या तुम्हारे में। जीभ में कडुवाहट है या तुम्हारे में ?

इसका उत्तर आपने दिया कि हमारे में मिठास है न कि में मिश्री।

दो०—करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवय जात ते सिल पर होत निसान॥

कहीं एक पत्थर पड़ा था जिसको लोग पैरों से कुचलते थे। एक शिल्पकार ने उसको देखा। उसको बहुत सुन्दर कीमती समझ कर ले गया। घिस कर राधा कृष्ण की मूर्ति बनाई। उसकी कीमत ५०० रुपये हो गई। जैसे एक अच्छे कारीगर के हाथ में पड़ जाने के कारण पत्थर का नाम, रूप, गुण सब बदल गया। उसको पूजा होने लगी, हार पुष्प चढ़ने लगे। ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि वह एक शिल्पकार के हाथ में पड़ गया था। कहीं वह एक मामूली शिल्पी के हाथ में पड़ता तो उसका सिल बनता और उसके हाथ में पड़ते ही पहले कूट-कूट कर उसमें छेद किये जाते और रात दिन पीसा जाता।

रूप, गुण, स्वभाव में राम और कृष्ण दोनों ही बराबर हैं। किसको छोटा कहा जाय किसको बड़ा। कहते हुए भी अपराध लगता है।

ज्ञान से अब समझिये—पत्थर जीव है, यानी मनुष्य, शिल्पकार सतगुरु हैं।

यदि मनुष्य पुण्यवश अच्छे सत्गुरु के हाथ में पड़ जाते हैं तो वे सुन्दर राधा कृष्ण रूपी मूर्ति बन जाते हैं एवं उनका जीवन धन्य-धन्य हो जाता है। उनका मानव जीवन सुवासित हो जाता है एवं इस नर तन की कीमत बढ़ा कर लोक परलोक दोनों में सुख पाते हैं। स्वयं भी सुखी होते हैं और अन्य को भी सुख पहुँचाते हैं। किन्तु वही जीव जब एक मामूली संसारी विषयो में फँस जाता है तो विषय-वासना, माया मोह के जालों में उसकी खूब पिसाई होती है। अचानक यदि किसी महान् पुण्य के द्वारा यह सद्गुरु के हाथ में पड़ जाता है तो उसकी कीमत बढ़ जाती है और जन्म-जन्म के दुख-दर्द, पाप क्षीण होकर सुख की प्राप्ति करता है।

आपने रामायण पढ़ा ही है। राम बड़ा या नाम बड़ा। आप कहेंगे राम बड़ा, किन्तु भगवान् गुरुदेव कहते हैं राम से नाम बड़ा है आपको सुनकर आश्चर्य होगा।

हमने सुना है, बहुत से बड़े घर के बच्चे ऐसे होते हैं जो पढ़ते ही नहीं, उसको याद कराने के लिये मास्टर को बार-बार रटाना पड़ता है। जो दिमाग वाले होंगे वे शीघ्र ही समझ जायेंगे। जो समझ नहीं सकते उनको निश्चय कराने के लिये अनेक धर्म, कर्म, साधन आदि करना पड़ता है। हम खुद हैं कहने से काम नहीं चलता। भगवान् सद्गुरु कहते हैं कि यदि कोई कार्य करते हैं तो हो ही जाय। यदि खेत जोतते हैं, बोने के उपरान्त जब फल हो जाये तभी सार्थक होगा। कर्म करे और इस प्रकार करे कि कार्य हो ही जाना चाहिये नहीं तो बात बनाना व्यर्थ है।

हम तो कुछ पढ़े-लिखे नहीं हैं। संसारी पुस्तकें नहीं हैं। आध्यात्मिक पुस्तकें कोई विशेष नहीं पढ़ी है। पर इतना हृदय में

लगता है कि बनिस्बत चारों तरफ दौड़ने और भटकने के तो यही उत्तम है कि एक स्थान पर बैठकर किसी कार्य को पूर्ण कर लें और अपनी आत्मा पवित्र कर लें। आप कहेंगे कि कहीं आत्मा भी अशुद्ध होती है। यह ठीक है, हमारे चरित्र पवित्र अपवित्र हैं किन्तु शरीर के संग वह लगा हुआ है। आत्मा तो निर्मल है ही। जब बच्चा उत्पन्न होता है तभी आत्मा निर्मल रहती है, वह पहले तेली राम क्यों कहा जाता है, साधु क्यों नहीं कहा गया, पूजा क्यों नहीं गया।

इसका उत्तर आप यहीं देंगे कि पहले दूसरा कर्म था अब दूसरा कर्म है, चाहें गेरुआ वस्त्र पहनो, चाहे अन्न त्याग दो, चाहे कुछ भी किया हो। शरीर में आत्मा पहले भी वही थी और अब भी वही है, किन्तु कर्म में अन्तर आ गया। कर्म में अन्तर आ जाने से उसी आत्मा, उसी शरीर की कीमत बढ़ जाती है। इसी लिए कहा गया है कि जीवन की उन्नति में कर्म प्रधान है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥

किसी को आप कहें गुरुदेव, गङ्गा किनारे एक साधु है वह कुछ नहीं करता। केवल बैठा है, कुछ भी हो वह ईश्वर का ध्यान तो करता है।

श्री गुरुदेव भगवान की जय।

———

श्री गुरवे नमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव त्वमेव सर्वम् मम देव देव ॥
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम ॥

हम नाव हैं या नाविक अथवा यन्त्र हैं या यन्त्री—इसी प्रश्न का उत्तर किसी ने ठीक भूमिका सहित नहीं दिया। जैसे ईट और सीमेंट दो नाम हैं किन्तु दोनों के सम्बन्ध से ही मजबूत दीवार खड़ी हो सकती है। जैसे किसी ने कहा आपने भाजी बहुत अच्छी बनाई आप जरा हमें भी बता दीजिये। एक तो (Practical) रूप से बना कर बताना होता है, एक मुंह से उसको बता दिया जाता है। बताना दोनों ही है। कोई शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण करता है। यदि सुरक्षा अच्छी प्रकार से होगी तो हमें कोई भय न रहेगा। इसी प्रकार भजन, विचार, निधिध्यासन के द्वारा उसको जानकर समझना दूसरी वस्तु है एवं कर्म से उसको परिवर्तित किया जायेगा तो हम लोग निर्भय हैं मुंह से खाली कह देना दूसरी बात है।

इसी प्रकार यह बात है कि हम चैतन्य हैं। नाव जड़ है अतः हम नाविक हैं। नाव नहीं हैं क्योंकि वह जड़ है। हमने मूर्ति बनाई है अतः हम कारीगर हैं क्योंकि हम चैतन्य हैं।

इन सब उदाहरणों के फलस्वरूप यह आशय निकला कि हम चैतन्य आत्मा हैं। हमने सृष्टि रचायी है। जब आप यह सब जान लेते हैं फिर आप यह क्यों कहते हैं हमसे यह काम नहीं हो सकता, हममें शक्ति नहीं है, हममें बुद्धि नहीं है?

बहुत से ऐसे संत-महात्मा हैं जो अपने को धूल बनाकर चलते हैं। अज्ञानीजन उन्हें धूल ही समझते हैं। परन्तु ज्ञानी-जन उनको महत्व देते हैं, क्योंकि कहते हैं बाँस जितना लम्बा होता है उतना ही झुकता है।

जैसे आप दुनिया के अनेक रंग बहुरंग देखते हैं उसमें भी अधिक रङ्ग बहुरङ्ग इस मार्ग में हैं जैसे भगवान राम। वह तो पारब्रह्म परमेश्वर थे फिर सीता जी के हरण पर क्यों गये? आपको रोना क्यों पड़ा? किन्तु महान् जन की लीलाओं को समझना बड़ा ही दुर्लभ है। उनके हर एक कर्म में रहॅस्य छिपा है। रामायण में कहा गया है कि वह कौन सज्जन हैं जिन पर रोना चाहिये।

ज्ञान से समझ कर एक बात कहना पृथक है एवं अज्ञान से न समझकर कहना पृथक है। अपने शक्ति स्वरूप को समझ कर कुछ लोक व्यवहार में कहना कि हम कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं कर सकते, बात दूसरी है, किन्तु अज्ञानी जीव का कहना दूसरा है।

एक बात और इसकी अलोचना में है कि पुरुसार्थ द्वारा हम हर एक कार्य को कर सकते हैं। यदि सच्चा पुरुषार्थ है तो अपनी इच्छा पर ब्रह्मांड नचा सकते हैं। यदि हम नौका वाले नहीं भी हैं नौका हैं तब भी नौका वाले बन सकते हैं।

हम शरीर नहीं हैं आत्मा हैं? आपने अपने एक हुए नाम पर कैसे विश्वास कर लिया? आप फूलचन्द नहीं हैं तो फिर

आपने अपने रखे हुए नाम रामगोपाल पर कैसे विश्वास कर किया ?

जिसने अपने स्वरूप को जान लिया, पहचान लिया, है वह ब्रह्म विचार के समय अपने यथार्थ आत्मारूपी नाम को बतायेगा।

अज्ञानी लोग यही करते हैं हम पापी हैं। इसमें कोई शक्ति नहीं है, किन्तु ज्ञान द्वारा हम पापी कहां हैं? साधक अवश्य ही एक दिन सिद्ध हो जायेगा, विद्यार्थी अवश्य ही एक दिन उच्चतम शिक्षा को प्राप्त करके मास्टर रूपी हो जायेगा।

जब साधक सिद्ध हो जाते हैं तो उसके पास अनेक लोग स्वयं आने-जाने लगते हैं और यदि वह सिद्ध कच्चा हुआ तो सिद्धि बाँटते ही बाँटते खतम हो जाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो अपना भी करते हैं दूसरों का भी करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं कि ऐसे अर्थी को पास में फटकने नहीं देते।

कभी-कभी आप लोग अपने को ऐसे गये बीते बना लेते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं।

जैसे बढ़िया बनारसी साड़ी हर समय काम में नहीं लाई जाती, उसी प्रकार ब्रह्म-स्वरूप का दिग्दर्शन, उस स्वरूप का बखान, हर समय थोड़े ही किया जाता है।

एक पंडित जी कथा-पुराण कहते रहते थे, और एक भक्त था किन्तु थोड़े ही दिनों में उसकी भक्ति विख्यात हो गई। लोग उसकी चरण-वंदना करने लगे। इस पर पंडित जी को बड़ी चिढ़ होने लगी। एक दिन मौका निकालकर पंडित जी ने भक्त-राज को अकेले में पाया और डंडा निकाल कर बोले, कहो तुम कब से गुरु बनने लगे? मैं तुम से इतना पुराना वृद्ध, मेरी कुछ नहीं, तुम्हारी इतनी ढोंगबाजी। भक्तराज ज्ञानी बुद्धिमान थे—उन्होंने कहा कौन कहता है मैं गुरु हूं। सब लोग ऐसे ही

बकते रहते हैं। मैं तो आपका सेवक हूं औरों के कहने से क्या होता है? हम तो आपके बच्चे हैं। पंडित जी ऐसी बातें सुन-कर प्रसन्न हो गये।

भक्ति-सागर में कहा है ८ बातें ज्ञान में नहीं मानी जातीं। आप जब शरीर नहीं हैं आत्मा हैं तो। आपके शरीर का नाम रामगोपाल उड़ गया और आत्मा सच्चिदानन्द रह गया। अज्ञान में नर-नारी है, ज्ञान में नहीं। छोटा बड़ा अज्ञान में है। गुरु कहते हैं जो जीवत्व की बात करते हैं उनकी संगत बिल्कुल मत करना, परन्तु व्यवहार में उसे बुरा मत बताओ। उससे हृदय मिलाकर न बात करो और न उसकी आसनी पर बैठो।

जब शरीर रूपी नाम खतम हो जाता है तो केवल आत्मा ही आत्मा रह जाती है। जब हम शरीर नहीं हैं तब न हममें पाप पुण्य है, न हम दुखी-सुखी हैं, न हमारा नाम है।

व्यवहार में आप भले ही गोकुलचन्द की माँ बनें, औफिसर की औफिसरनी बनें, किन्तु उसे तो अपने को समझना चाहिये। जैसे, एक सद्गृहिणी होती है। कार्य करते समय उसी प्रकार से मैले कपड़े से सब गृहस्थी का कार्य सुचारु रूप से सम्हालती है। थोड़ी देर पश्चात् वह नहा-धोकर साफ होकर कुर्सी पर बैठकर सबसे बातें करती है। उस समय उसका रूप-लावण्य दूसरा ही रहेगा।

इसी प्रकार यदि हम ज्ञान से भजन पूजा करते हैं तो अव-सर पड़ने पर अपनी शक्ति से हम काम ले सकेंगे। यदि हम अपने को जानते ही नहीं, पूजा भक्ति जानते हो नहीं, तो उसकी शक्ति हमारा क्या कार्य करेगी?

फूहड़ स्त्री मैली धोती पहनने वाली, अच्छे से अच्छे, बढ़िया से बढ़िया कपड़े होने पर भी उनका इस्तेमाल न जानने के कारण सदैव फूहड़ बनी रहेगी।

अज्ञान की भावना हृदय में नहीं रखना चाहिये। अपने में सदैव उच्च ब्रह्म विचार की भावना रखनी चाहिये। मिथ्या भान मिटा देनी चाहिये। यदि आत्म शक्ति नहीं है तो पुरुषार्थ के द्वारा हम सब कुछ कर सकते हैं।

मिठास हममें है वस्तु में नहीं। एक आलू है, किन्तु उसकी विविध वस्तुएँ विविध नामों से बन जाती हैं। अतः असली वस्तु को जानना अनिवार्य है।

मनुष्य अपने को जिस रूप में ढालना चाहे, ढाल सकता है। हम स्नान करके कुम्भ मेले से लौट रहे थे, देखा एक आदमी नौका पर बैठा तिल का लड्डू मजे से खा रहा था। मैंने सोचा देखो यह सवेरे ६ बजे गङ्गा किनारे नाव पर बैठा कैसा लड्डू खा रहा है हमें तो १२ बजे के पहले भूख ही नहीं लगेगी। दिल ही न लगेगा कि मुँह में कुछ डालें।

जीव के समय जीव, ब्रह्म के समय ब्रह्म की बात करनी चाहिये। आप लोगों ने लिखा उससे मेरा भाव बिल्कुल अलग है। किन्तु जितना भी लिखा है सब ठीक है।

जब समुद्र पर बन्दर पुल बाँधने लगे तब समुद्र साकार रूप धरकर भगवान के सम्मुख रोने लगा। भगवान ने समुद्र से पूछा—तुम क्यों इस प्रकार साधारण पुरुष के सदृश रो रहे हो? समुद्र ने कहा—प्रभु! यदि आप मेरे ऊपर पुल बाँधते तो मुझे कोई कष्ट न होता, किन्तु छोटे-छोटे बन्दरों की इतनी सामर्थ्य है कि एक-एक ढेले से मेरे ऊपर पुल बाँध रहे हैं। आज यदि मैं रावण की कुसंगति में न रहा होता तो क्या मेरी यह दशा होती?

प्रभु ने कहा, इसमें दुख मानने और रोने की कोई बात नहीं है। बन्दर साधारण नहीं हैं, यदि ऐसा ही होता तो सभी बन्दर पुल बाँध लेते।

रावण की संगति न होती तो मेरा दर्शन न होता। इस प्रकार प्रभु ने उसको सांत्वना दी।

हर पत्थर पर राम नाम लिखकर समुद्र में डाला जाने लगा जिससे पुल बाँधा जाय। यह देखकर पत्थर रोया और कहा जिसको आप छोड़ देंगे वह सदैव के लिये चरणों से जुदा हो जायगा। तब प्रभु ने पत्थर को वरदान दिया और कृष्णावतार में गिरवर पर्वत को अपने हाथों पर उठाया।

आप कहेंगे, कहीं पत्थर भी रोता है। किन्तु यह हमने स्वयं देखा है और अनुभव सिद्ध है कि पहाड़ों पर जो पत्थर होते हैं वे समय-समय पर बढ़ कर पहाड़ बन जाते हैं। समय पर विष अमृत का काम करता है। किस समय कौन सी वस्तु लागू होगी यह नहीं कहा जा सकता।

मिठास किसमें है? मैंने देखा है जब नीम का फूल झड़ता है लोग भूनकर खाते हैं। कोई धुआँ देकर सूँघते हैं। उन्हें अच्छा लगता है और कोई एक फूल भी नहीं खा सकता।

अब बताओ, वस्तु में कड़वाहट या मिठास है कि हममें? यदि मिठास ही मिठास होता तो किसी को कड़ुआ और किसी को मीठा क्यों लगता?

इसका परिणाम यह निकला कि हममें ही तीता-मीठा है। किसी को भात अच्छा लगता है, किसी को रोटी, किसी को हलुआ, अन्य को और कुछ अच्छा लगता है। अनेक लोग अनेक प्रकृति, स्वभाव एवं रुचि के होते हैं। इसीलिए अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सभी कपड़े पहनते हैं। सभी वस्तुएँ एक के लिये अच्छी दूसरे के लिये खराब होती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु का आनन्द स्वाद हममें ही है, बाहर नहीं। जैसे शीतलता, ताकत, आमद आदि। इसी प्रकार सुख दुख भी कुछ नहीं है। वह हमारे ही

भाव के अनुप सुख-दुख बन जाता है। सुख-दुख, मान-अपमान, राग-वैराग्य सब कुछ अपने में है बाहर कुछ भी नहीं है। यह केवल भावना की संज्ञा है।

दो०—पुरुष बली नहि होत ¦ प होत बलवान।
भिल्लन लूटी गोपिका, वहि अर्जुन वहि बान॥

यदि हृदय में वैराग्य की भावना उठी है तो वही एकान्त जंगल हमें सुख पहुँचायेगा, उस स्थान का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा। सब कुछ हमारे ही अन्दर है, बाहर नहीं।

जो सुख है राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।
कहत कबीर सुनो भई साधो, काहे फिरत अमीरी में॥

कहने का आशय यह है कि जिसकी परिस्थिति जैसी हो वह वैसे ही प्रसन्न रहता है। यह तो अपनी-अपनी पसन्द है। त्यागी को त्याग पसन्द; राजसी को राज और वैरागी को प्रभु। मनुष्य भी वही रहता है, वस्तु भी वही है, परन्तु ज्यों-ज्यों उसकी भावना बदलती है त्यों-त्यों उसकी रुचि में अन्तर आता जाता है।

सब कुछ हमारे मानने में है। मान-अपमान, सुख-दुख, धीरज-असन्तोष बाहर कुछ भी नहीं है। किसी को दान नहीं दिया जाता। जो दान दिया गया उसका दुगुना हमें मिल जाता है। चन्द्रमा पर थूको अपने ऊपर पड़ता है।

कोई माँ के मरने पर रोता है। नारद जी अपनी माँ के मरने पर खुशी से नाचते थे।

एक वैरागी की कथा

बहुत प्राचीन कथा है। उत्तर भारत में एक वैरागी रहते थे। वह पूर्ण त्यागी एवं आत्मवेत्ता थे। जङ्गलों में विशेष रूप से भ्रमण करते थे। एक दिन वह कहीं पर खड़े प्रभु की अनुपम

लीला पर विचार कर रहे थे इतने में उधर से एक बादशाह उनके समीप से गुजरा। महात्मा जी ज्यों के त्यों स्थिर रहे। वैरागी की इस बेअदबी पर बादशाह को क्रोध आ गया। उसने सोचा मैं इतना बड़ा बादशाह और एक यह एक लंगोटी वाला। इसने मुझे नमस्कार तक नहीं किया; मार्ग से हट जाना तो दूर रहा। ऐसा सोचकर उसने म्यान से तलवार निकाली और कहा ऐ वैरागी ! तुम किस अभिमान में हो, मैं इस देश का बादशाह और तुमने मुझे नमस्कार तक नहीं किया। वैरागी ने नेत्र खोले एवं गम्भीरता से बोले मैं तो दुनिया के केवल एक ही मालिक को जानता हूँ और उसी को सबसे बड़ा सोचता हूं। इसीलिये उसीके सम्मुख माथा टेकता हूँ अन्य के नहीं।

बादशाह और भी उत्तेजित होकर बोला, तुझे मेरा भय नहीं है ? तलवार निकालते हुये कहा, देख ! अभी मैं तुझे मौत के घाट उतारता हूं।

वैरागी बोला—मैं सदैव से निर्भय हूँ। तुम मुझे नहीं मार [illegible] तलवार और मैं एक ही तत्व का बना हुआ हूँ एवम् जो तू बोल रहा है वह मेरा इश्क है। हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं।

बादशाह ने ज्यों ही तलवार ऊपर उठाई हाथ ऊपर ही उठा रह गया। बादशाह वैरागी के चरणों पर गिर पड़ा एवं क्षमा माँगने लगा और प्रार्थना की कि मेरे सङ्ग राज-दरबार में पधारिये सर्व सुख आपके लिये उपलब्ध है। वैरागी बोला, मुझको यहाँ से बढ़ कर कहीं सुख नहीं है। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। बादशाहियत से बहुत दूर रहना चाहता हूं कहने का तात्पर्य यह है कि जब सब कुछ मानने भर का है तब क्यों मान-अपमान, दुख-सुख माने। किसी ने किसी को बाँध नहीं रखा है वरन स्वयं अपने को बँधा मान रखा है। पहले

गोपाल अपने को माने बाद में फिर सच्चिदानन्द माने। पहले कोई कागज पर लिखकर 'रामगोपाल' नाम की उपाधि तो दी नहीं गई थी और न बाद में फाड़ी ही गई। केवल मानने का बंधन हटाया। भगवान गुरु कहते हैं मनुष्य अपने को 'मरेंगे' निश्चय कर रखा है इसीलिये मरता है नहीं तो न मरे। बड़े-बड़े सिद्ध लोग १०० वर्ष से ऊपर १२५ वर्ष तक बढ़ जाते हैं। यह अपना दृढ़ विश्वास—सत्य संकल्प—है कि वह इतने दिन जिये।

प्रश्न—संसार बिल्कुल चार दिन का है, सत्य है कि असत्य। संसार में एक ही है दूसरा कुछ नहीं है—सत्य है या असत्य है।

भक्त और उनके भगवान की जय।

श्री गुरवे नमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण नारायण।
लक्ष्मी नारायण नारायण नारायण॥

बिना जल के नौका कभी नहीं चल सकती। इन्द्र जैसा राजा, कालिदास जैसे विद्वान, धन्वन्तरि जैसा वैद्य, कुबेर जैसा धनी हो तब भी वह जल के बिना नौका नहीं चला सकता। लाख प्रयत्न करने पर भी जल के बाहर नौका चलाना निष्फल रहेगा। इसी प्रकार यदि आप कोई फल चाहती हैं तो कर्म अवश्य करना पड़ेगा। शुभ कर्म करने से शुभ फल मिलेगा और अशुभ दुखदायी (दूसरों के दुख देने वाले) कर्म करने से वैसा ही फल मिलेगा। जैसा जो कर्म करेगा निःसन्देह वैसा ही फल मिलेगा। बम्बई वाली गाड़ी कलकत्ता नहीं पहुँच सकती।

कर्म करने के पश्चात् आप चाहे फल चाहें अथवा न चाहें सात धरती के नीचे बैठने पर भी उसका फल मिलेगा। आप कर्म करें और कहें हमें फल न मिले न मिले; किन्तु फल अवश्य ही आपको भोगना होगा।

कर्म तीन प्रकार का होता है :—

१—मनसा, २—बाचा, ३—कर्मणा।

मन क्रम वचन छोड़ि चतुराई। भजन कृपा करिहैं रघुराई॥

श्रीरामचरित मानस सिद्धान्त से कलियुग बहुत ही अच्छा है। किसी ने कहा क्यों? महात्मा ने कहा, कलिकाल में शुभ कर्म सोचने मात्र से फल मिलता है, शरीर और कर्म से करने की तो कोई बात ही नहीं। पाप का फल मन से सोचने पर नहीं मिलता, केवल करने पर मिलता है। यही कलयुग की विशेषता है।

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहिं पापा॥

बिना विश्वास के कुछ भी नही होता। लाख कर्म करें उसमें विश्वास रखना आवश्यक है।

महात्मा एवं राजकुमार की कहानी

एक राजा के सात रानियाँ थीं। किसी के भी संतान नहीं थी। भाग्यवश छोटी रानी से एक कन्या एवं एक पुत्र का जन्म हुआ। द्वेषवश छहों रानियों ने मिलकर उसको बक्स में बन्द करके नदी में डलवा दिया। जब राजा साहब दरबार से आये तब उन लोगों ने कह दिया, छोटी रानी के गर्भ से दो पत्थर निकले हैं। राजा ने क्रोध से उसको कौआ हकनी बना दिया।

नदी में बहाये हुये राजकुमार और राजकुमारी एक माली को प्राप्त हुए। वह सुन्दर दो शिशुओं को पाकर पुष्प की तरह

करने लगा। जब राजकुमार बड़ा हुआ, उसने सुना यहाँ से पूर्व की ओर एक सुन्दर बगीचा है जिसमें तीन वस्तु प्रधान हैं—

१—सोने के पानी का एक सरोवर है। उसमें स्नान करने से शरीर दिव्य हो जाता है एवं अनुपम् सौन्दर्य की प्राप्ति होती है।

२—आम का एक वृक्ष है जो बेमौसम फलता है। उससे जो कामना करो वह पूर्ण करता है।

३—एक चिड़िया है जो त्रिकालदर्शी है एवं त्रिकाल की बात बताती है।

राजकुमार ने माली से आज्ञा माँगी और बहन को सन्तोष पूर्ण सान्त्वना देकर अनमोल वस्तु को लेने चल पड़ा। आधे रास्ते में एक महात्मा जी मिले। छोटे से बालक का यह साहस देखकर वह बहुत प्रसन्न हुये। उसे बहुत समझाया कि तुम वहाँ मत जाओ। बहुत से राजकुमार एवं वीर योद्धा ज्योतिषी, पंडित मार्ग में मर गये। परन्तु राजकुमार नहीं माना तब महात्मा ने कहा जब तुम मार्ग में जाओगे और ज्यों-ज्यों बगीचे के समीप पहुँचोगे तुम्हें भयानक शब्द सुनाई पड़ेगा, किन्तु तुम मत डरना। राजकुमार बुद्धिमान था। उसने तत्काल कान में रुई ठूंस ली और चल पड़ा। मार्ग की कठिन बाधाओं को झेलता हुआ बगीचे में पहुँचा और तीनों वस्तुओं को अपने घर ले आया। उन्हीं की सहायता से माली को भी सुख पहुँचाया और वह कौन था, कहाँ से आया था, अपनी वास्तविकता का चिड़िया द्वारा पता लगाकर अपने वास्तविक माता पिता से जा मिला।

इतना सब कहने का आशय यह है कि उसी बालक की तरह कठिनाइयों को सहते हुये, धीर बुद्धि रखते हुये, बड़ी हिम्मत, साहस के साथ, बड़ों की सम्मति मानकर, अग्रसर होते

तभी सफलता और ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। संसारी मनुष्य और अनेक प्रकार के प्रलोभन हमें सतमार्ग में जाने से रोकते हैं और डराकर अपनी ओर पीछे खींच लेते हैं। कुछ धीर लोग आगे बढ़ते हैं, किन्तु मार्ग की कठिनाइयों, संसार की परेशानी, से घबड़ाकर पुनः संसार में आ जाते हैं।

महात्मा जो एक किनारे पर बैठे थे। वह आदि अनादि सतगुरु हैं जो संसार की यथार्थता का ज्ञान कर सतमार्ग पर चलने के पथ बताते हैं। जैसे अनेक वीरों ने चलने का साहस किया उसी प्रकार बहुत से जीव उस वचन पर विश्वास करके आगे बढ़ते हैं, किन्तु संसार के कोलाहल से पथभ्रष्ट होकर फिर संसार में आ जाते हैं। किन्तु जो छोटे से बालक के सदृश धीर, बलवान, बुद्धि रहकर आगे बढ़ता है, कान में रुई ठूंस लेता है यानी इनकी ओर से बिल्कुल ही बहरा हो जाता है वह ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है नहीं तो भटक जाता है।

सर्वप्रथम पहली कक्षाओं में यही बात थी कि नाम महिला गाना और अपने रूप को पहचानना। आप अब कुछ आगे बढ़ गई होंगी सोचकर मैंने पूछा—संसार द्वैत है या अद्वैत ?

एक लड़की के अनेक पदार्थ बनते हैं। एक जल से लहर, भंवर अनेक वस्तुएँ बनती हैं किन्तु तत्व एक ही रहता है। आकार में अन्तर रहता है। ज्ञानेश्वर महाराज ने इस बात को सत्यसिद्ध कराया था। विरोधी जनों ने एक बार उनसे कहा था यदि तुम कहते हो विश्व सच्चिदानन्द है तो भैंस से वेद पढ़ाओ। इस पर उन्होंने भैंस से वेद पढ़वाया था और वह आगे बढ़े।

सफेद वस्त्र पर जो रङ्ग चढ़ायेंगे वही चढ़ेगा। लाल चढ़ायेंगे तो हरा नहीं चढ़ सकता। इसी प्रकार एकात्मा पर विश्वास करने वाले को एकात्मा का प्रत्यक्ष भास होता है। जैसे ज्ञान का कोई अपने को स्वयं चोट नहीं पहुँचाता उसी प्रकार संसार

भयावनी वस्तुएँ अपने ही अङ्ग की तरह कार्य एवं व्यवहार करती है।

भगवान सतगुरु कर्म द्वारा इस बात को सत्य सिद्ध करके अनुभव में प्रत्यक्ष कराते हैं कि विश्व में सच्चिदानन्द प्रभु के सिवा कोई नहीं है।

चार दिन से तात्पर्य यह है कि संसार का प्रत्येक चाल-व्यवहार झूठा है। यह तो सभी जानते हैं कि संसार नाशवान है।

प्रश्न—इस लोक में लोग किस प्रकार से सुखी होते हैं अर्थात् वास्तव में किस प्रकार से सुख को प्राप्त करते हैं या विश्व पर विजय कैसे प्राप्त करें।

श्री गुरुदेव भगवान की जय

श्री गुरुवे नमः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देव॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरु देवन के देव।
सर्व सिद्धि फल देत गुरु, आपहि मुक्ति करेव॥
गुरु केवटहि होय करि, करो भवसागर पारि।
जीव ब्रह्म कर देत हरि, आपुहि व्याधा हारि॥

पूर्व प्रश्न का समाधान—

अनेकों ने अनेक मत लेकर इस प्रश्न का समाधान किया

है। किसी ने कर्म, किसी ने विश्वास, किसी ने ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति। सब का मत ठीक है। हम खंडन-मंडन करना नहीं चाहते हैं, न खंडन-मंडन से लक्ष्य की प्राप्ति होती है। जैसे अनेक प्रकार के फूल होते हैं—गुलाब, चमेली, टक्कर। फूल तो फूल ही है। किसी ने पूछा सबसे उत्तम फूल कौन है? पूछने वाला चाहता था गुलाब का फूल यह लोग कहें, किन्तु कहने वालों में से किसी ने टक्कर, किसी ने चमेली और किसी ने जूही बताया। जिसने चमेली, जूही कहा हो वह फिर भी अच्छा है, किन्तु जिसने गुलाब कहा हो वही प्रथम है।

दो०—करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान॥

सत्य जीत किसी किसी को होती है। यों तो सभी अपने को विजयी कहते हैं जिससे सत्य प्राप्त किया होगा वह सद्गुरु के द्वारा हो। जिसने विद्यालय में विद्या प्राप्त की और वह पास न हो तो पढ़ाई व्यर्थ है। मनुष्य का जन्म इसलिये नहीं है वह तो केवल हरि भजन के लिए, उनको जानने-समझने के लिए हैं। जिसने केवल वाक्य से ही ब्रह्मज्ञान छाँटा हो उससे क्या फायदा? हाँ, इतना ही हुआ कि हम कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं बोलते थे, बोलने लगे।

रामायण में भगवान ने कहा है—

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥

किसी से प्रेम खूब करो किन्तु केवल प्रेम ही करते जाओ और उसके घर बार को देखा ही तो वह प्यार किस काम का?

जिसका श्रवण ठीक उसका मनन भी ठीक जिसका मनन ठीक उसका निदिध्यासन भी ठीक।

यदि किसी ने कोई कहानी सुनाई और दूसरा उस कहानी को जानता हो तो वह तत्काल ही कह देगा अमुक वस्तु तुमने छोड़ दी।

भगवान की बहुत पूजा-पाठ करिये, किन्तु कहीं चोरी कर ली, भगवान को पसन्द नहीं आयेगा। भगवान को खूब पैसा चढ़ाइये किन्तु उनके (Grop) का खंडन-मंडन कर दीजिये वह कभी भी प्रसन्न नहीं होंगे।

ब्रह्मज्ञान को केवल प्राप्त कर लेने से लाभ नहीं। सबसे प्रमुख हममें सद्गुण होना चाहिये। दैवी गुण यानी दैवी सम्पत्ति होना परमावश्यक है।

चाहे द्वैत कहो चाहें अद्वैत और चाहे विशिष्टाद्वैत कहो किन्तु दैवी सम्पत्ति सद्गुणों से उनको जीत सकते हैं।

सर्वप्रथम हम इसी लोक में देखें। इस लोक में सद्गुणी होंगे तो दूसरे में होंगे। यहाँ कीर्तिमान होंगे तो दूसरे में भी होंगे। बबूल का बीज बोया है तो बबूल के काँटे ही होंगे, आम के फल नहीं।

दैवी गुण यदि न भी हो तो इन्हीं कर्मों के द्वारा हममें अच्छे दैवी स्वभाव उत्पन्न हो जायेंगे। अच्छे गुरु जैसे आदेश देते हैं उस पर चलते-चलते दानव से माधव बन सकते हैं।

धीरज नहीं त्यागना चाहिये क्रमशः सब कुछ आ जाते हैं। बहुत सी माताएँ कहती हैं कि सदैव हमारे प्रश्न गलत रहते हैं, किन्तु हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। किसी न किसी दिन ठीक ही होगा।

एकान्त सेवी प्रपंच में नहीं बैठ सकता और प्रपंची एकान्त सेवी के पास नहीं बैठ सकता। जो जितना ही ईश्वर के समीप होगा वह उतना ही ईश्वर के तुल्य होगा—उसमें दैवी गुण विशेष होगा।

रामायण के अनुसार चार प्रकार की मुक्तियाँ हैं—

सामीप्य, सारुप्य, सालोक्य, सायुज्य। सामीप्य मुक्ति कहते हैं उसको कि पास में रहता। ऐसी मुक्ति किसने पाई? कहा है कि:—

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरण कमल चापत विधि नाना॥

और सारूप्य मुक्ति कहते हैं भगवान के समान रूप की प्राप्ति। तो यह किसने पाई :—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा॥

सालोक्य कहते हैं उसको कि भगवान के समान लोक प्राप्ति। सो किसने पाई :—

राम बालि निज धाम पठावा।

नगर लोक सब व्याकुल धावा॥

सायुज्य मुक्ति पाई रावण व कुम्भकर्ण ने क्योंकि कहा है—

तासु तेज प्रभु बदन समाना,

सुर मुनि सबहिं अचंभा माना

जैसे कुलीन घर के लोगों का बैठना, उठना, खान-पान सब दूसरह ही होता है और नीच कुल का दूसरा ही होता है। उसी प्रकार ईश्वर के सान्निध्य में पहुँचे हुये का दूसरा ही होता है।

भगवान गुरुदेव कहा करते थे कि बात करो तो कम से कम पाँच लाख की उसमें ८०० तो मिल ही जायेगा—अरे भाव तो ऊँचा रक्खो।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा॥

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

अपनी बुद्धि को निर्मल करो, प्रपंच न करो। गुरुनिष्ठा गुरुभक्ति न भी हो तो निर्मलता के कारण तर जायेंगे। बुद्धि और ज्ञान हो तो शीघ्र पार हो सकते हैं। जिसकी बुद्धि ही तीसरे दर्जे की हो वह कुछ नहीं कर सकता। तुलसी पत्र पर ज्ञान की बात लिखकर उसे घोटकर पिलाया जाय तो क्या होगा ?

सत्य के इच्छुक को सत्य की प्राप्ति हो ही जाती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो पैदा होते हुए संसार से भाग जाय। शुकदेव जी गर्भ से ही आत्मज्ञानी थे फिर भी माया के डर से उन्हें १२ वर्ष गर्भ में बास करना पड़ा। अन्त में जब उनको बाहर निकालने का कोई साधन न निकला तो प्रभु से प्रार्थना की गई। प्रभु ने ५ मिनट के लिये जब जगत से माया हटाई तब वह बाहर निकले। इतने बड़े आत्माज्ञानी को क्यों अंधकार से डरना पड़ा ? भगवान रूपी सतगुरु ने आकर माया को हटाया।

गीता में कहा गया है कि जिसने आत्मस्वरूप को पा लिया उसके द्वारा हम कठिन से कठिन दुर्लभ दुखों से बच जाते हैं जिनसे बचना असम्भव है। उसके पास दुख सुख सब आते हैं पर उसे भान नहीं होता। न कोई अपना पराया हैं, न अपनी ही है। न किसी से प्रेम है न किसी से अप्रेम।

बुरे हो न भले हो, मिले हो न जुदे हो।
बँधे हो न खुले हो, केवले केवले ॥

सब कुछ होते हुये भी हम पत्थर हैं। उसका हृदय, मन, बुद्धि, स्वभाव ऐसा हो जाता है कि वह न है ही कह सकता है, न नहीं ही।

जैसे, यदि कोई बरसाती ओढ़ कर पानी में खड़ा है और

मूसलाधार पानी बरस रहा है, लेकिन उसके लिये कोई असर न होगा। इसी प्रकार महापुरुष हैं। वह स्वयं भी पार होते हैं एवं दिव्य दृष्टि देकर दूसरों को भी पार करते हैं।

एक पंडित जी एक बैलगाड़ी में ज्ञान की पोथी-पत्रा भर कर एक सँकरी गली से चले जा रहें थे। किसी पथिक ने पूछा इतना पोथी-पत्रा लेकर कहाँ जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया राजा के प्रश्न का उत्तर देने। इस पर पथिक ने कहा, तुम उसके उत्तर तो एक पुस्तक से भी दे सकते हो। व्यर्थ में इतनी पुस्तक ढोने से क्या लाभ ? तब उस जवाब देने वाले ने ऐसा ही किया।

इसी प्रकार ज्ञानभक्ति मार्ग में मुद्रा आदि लेकर भटकने से क्या लाभ ? एक ही तत्व को पकड़ कर ठीक से चलें। यह अध्यात्म केन्द्र केवल आत्मस्वरूप को आत्मज्ञान से जानकर अज्ञान से मुक्त करने के लिये है। सद्सम्पत्ति आत्मशक्ति का का ही रूप है। दैवी सम्पत्ति ही तो आत्मशक्ति है। हमको अनेक बातों से क्या मतलब ? अपने जानने भर की बात को समझ लेना चाहिये। हमारे पूर्वजों को रात्रि-दिवस पूजा-पाठ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वह स्वयं दैवी सम्पत्ति लेकर उत्पन्न होते थे। जिसने अपना ही उद्धार न किया वह दूसरों का क्या करेगा ? जिसने विजय प्राप्ति की उसने दैवी सद्गुणों द्वारा ही प्राप्ति की।

श्री गुरुदेव भगवान की जय।